बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

के द्वारा

पी-एच०डी० उपाधि हेतु

छन्दः शास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन
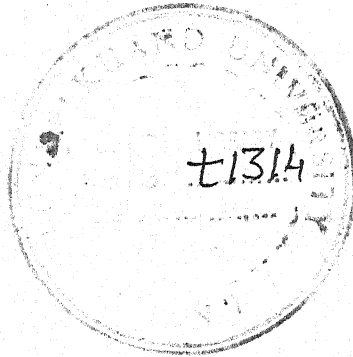
शोध निर्देशक
आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा)

शोधार्थिनी
श्रीमती ऊषा द्विवेदी
एम०ए० (संस्कृत), बी०एड०
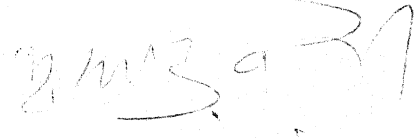
सुभाषित

अक्षरेण मिमते सप्तवाणी ऋ0 1.164

24-अक्षरेणैव सप्तवाणीः वागाधिष्ठितानि सप्त छन्दांसि

मिमते निर्माणं कुर्वन्ति सायण।

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि शोधच्क्ष छात्रा श्रीमती ऊषा द्विवेदी एम०ए० (संस्कृत) ने मेरे निर्देशन में प्रस्तुत शोध विषय पर शोध कार्य सम्पन्न किया। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध सर्वथा मौलिक है तथा विषय का सांगोपांग निरुपण करता है। शोधकर्ती का निष्ठापूर्वक अध्ययन सराहनीय हैं। मैंने शोध प्रबन्ध देख लिया है। यह पी-एच०डी० कि उपाधि के सर्वथा योग्य हैं।

कृष्णदत्त चतुर्वेदी
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा)

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी

के अन्तर्गत संस्कृत में शोध कार्य हेतु

प्रस्तुत प्रपत्र

शोध कार्य का विषय : संस्कृत साहित्य

शोध कार्य का माध्यम : हिन्दी

शोध कार्य का शीर्षक

छन्द: शास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन

शोध कार्य की संस्था : अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा)

शोधार्थिनी : श्रीमती ऊषा द्विवेदी

पत्र संकेत : ग्राम-तिन्दवारी, हनुमान नगर

पोस्ट - तिन्दवारी

जनपद - बाँदा (उ०प्र०)

शोध निर्देशक

(आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी)

पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष

अतर्रा महाविद्यालय अतर्रा (बाँदा)

शोधार्थिनी

श्रीमती ऊषा द्विवेदी

(श्रीमती ऊषा द्विवेदी)

एम०ए० (संस्कृत), बी०एड०

छन्दः शास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन

उद्‌देश्य : प्रस्तावित शोध विषय का शीर्षक है :-

छन्दः शास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन :-

विश्व में ज्ञान के केन्द्र वेद है या यों कहा जाय कि वेद ज्ञान के पर्याय है, वेदों के अध्ययन के द्वारा ही मानव जीवन की सार्थकता है विशेषकरके भारतीय संस्कृत के आगाहन हेतु वेदों का अध्ययन अनिवार्य है। यही कारण है कि न केवल भारत प्रस्तुत सारा विश्व वेदों के प्रति आज भी आकृष्ट है।

कहा जाता है कि ब्राह्मण को बिना किसी स्वार्थ भावना के छः अंगों के सहित वेदों का अध्ययन करना चाहिए।

"ब्राह्मणेन निष्कारणषोऽयो वेदों डध्येयो गेयश्च।"
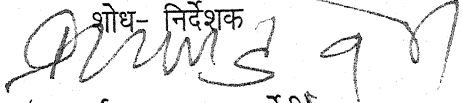
यह भी निश्चित है कि वेदों के अध्ययन के पश्चात ही वेदाध्यान की सार्थकता है वेदों के छः अंग व्याकरण, विकसित, शिक्षा, कल्प ज्योतिष और छन्दस है इनमें व्याकरण को वेद का मुख तथा छन्दस को वेद के चरणों के रूप में अभिषित किया गया है यह निर्विवाद है कि सारा का सारा वैदिक लौकिक एवं संस्कृत वाङ्मय व्याकरण पर आधारित है किन्तु छन्द/ शास्त्र की उपादेयता अपने क्षेत्र में अक्षुण्ण है। तभी तो वैदिक युग में ऋषि देवता के साथ छन्दों का ज्ञान की भी अनिवार्यता सर्वमान्य थी।
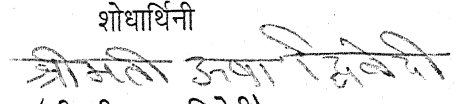
वैदिक कालोत्तर पौराणिक युग से लेकर काव्य काल तक छन्दों की उपयोगिता निर्विवाद रही है। इसका ज्वलन्त प्रमाण यह है कि संस्कृत में छन्दों के ज्ञान हेतु समय समय पर लाक्षणिक, ग्रन्थों की रचना होती रही है। इतना ही नहीं परवर्ती काल में भी हिन्दी एवं अन्य प्रान्तीय भाषा के कवियों ने छन्दों ज्ञान के लिये समय समय पर उपयोगी ग्रन्थ लिखें किन्तु आधुनिक युग में शास्त्रीय छन्दों की संकीर्ण परिधि से काव्य निर्माण मुक्त छन्द के वातावरण में यह मान होता गयाा है।

निश्चित ही जीवन में संगीत की उपादेयता अपरिहार्य है किन्तु छन्दों विहीन संगीत विसंगति हो जाता है संस्कृत भाषा को अमर भाषा शायद इसीलिये कहा जाता है कि यह स्वाभवतः संगीतात्मकता से ओत प्रोत है इसीलिये वह अपनी प्राणवत्ता बनाये हुए है और अमर है। सम्भवतः वेद का अमर नाम छन्दस इसी अर्थ में सार्थक है उसका गद्य या पद्य सम्पूर्ण रूप से छन्दस के नाम से ही विख्यात है। जीवन की विसंगति की उपेक्षा उसको संगत सुसंस्कृत निर्माण करना मानव का लक्ष्य होना चाहिए। इस अर्थ में छन्दस शास्त्र भूमिका निर्बाध रूपेण स्वीकार है।

इसी उद्देश्य को लेकर जिससे छन्द शास्त्र की स्वरूपा अवगत के माध्यम से अपने जीवन को अपने परिवेश को अपने समाज को या अपने विश्व को सुसंगत एवं सुपरिष्कृत कर सकें एवं छन्द शास्त्र जैसा उपयोगी वेदांग उपेक्षित हो रहा है उसकी उपयोगिता का स्थापन हो सके एवं मानव समाज वर्तमान विसंगतियों एवं विडम्बनाओं से प्राण पा सकें। प्रस्तुत शोध विषय का यही उद्देश्य है।

आशा है मनीषी विद्धज्जन इस शोध शीर्षक को स्वीकृत कर शोधार्थिनी को अनुग्रहीत करें।

शोध- निर्देशक

(आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी)

पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष

अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा

शोधार्थिनी

श्रीमती ऊषा द्विवेदी

(श्रीमती ऊषा द्विवेदी)

छन्द शास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन

शोध कार्य सूची-

शोध- निर्देशक

(आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी)
पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष
अतर्रा महाविद्यालय, अतर्रा, बाँदा

शोधार्थिनी

(श्रीमती ऊषा द्विवेदी)

प्राक्कथन

विधाता कि सृष्टि नितांत आश्चर्यमयी तथा अद्भुत है इस सप्तद्वीपवती पृथ्वी का आयाम अत्यन्त विस्तृत तथा विशाल है जिसके अन्तर्गत स्थावरदंगमात्मक सृष्टि की संरचना है जो अत्यन्त ही रहस्य पूर्ण है इसी जगत में जीवन है उस जीवन का बहिरंग अशंख रूपों में रूपायित है जिसका आकलन परिकलन सृष्टि से आदि काल से आज तक हो रहा है किन्तु उसका समग्र रूप में परिचय दूरूह ही रहा है संस्कत वाग्ङ्मय में ऋग्वेद के नासदीय सुक्ति से लेकर योगराज अरविन्द तक जीवन और जगत के विषय में पर्याप्त विचार विमर्श हुआ जो अपने आप में महत्व पूर्ण है किन्तु इस युष्मदस्मत् प्रपंच का तात्विक विनिश्चय सम्प्रति भी शेष है।

उर्दू के एक शायर ने लिखा है-

सदियों से फिलसफा कि, चुआ वो चुनी रही
लेकिन खुदा की बात, जहाँ थी वहीं रही।

फिर भी विद्यवान मनीषियों ने धैर्य और साहस नहीं खोय प्राचीन काल से लेकर अब तक तात्विक समाधान के लिये चिन्तन मनन चल रहा है विश्व भर के दार्शनिक एवं आधुनिक विज्ञान जीवन एवं जगत के तात्विक विश्लेषण में दत्तचित्य है।

इस क्षेत्र में भारतीय दर्शक का महत्वपूर्ण स्थान है गौतम का न्याय कणाद वैशेषिक कपिल का सांख्य, पंतन्जली का योग, जैमिनी कि पूर्व मीमांसा और व्यास की उत्तरमीमांसा, यह छः दर्शन आस्तिक दर्शनों कि कोटि में आते हैं एवमेव चार्स्वाक जैन, बौद्ध (जिसके चार महत्वपूर्ण सिद्धान्त बन चुके हैं) यह छःहो मिलाकर नास्तिक दर्शन कहे जाते हैं इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में यूनानी तथा यूरोपीय दार्शनिकों कि भी चिन्तन पद्धति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है। किन्तु जड़चेतनात्मक जगत के रहस्य में कोई कमी नहीं आयी सच तो यह है कि संदर्भ में उच्च्व से उच्चतर जितना प्रयास होता रहा सृष्टि तत्व उतना ही गहन से गहनतम होता गया सारांश यह है कि मर्ज बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की यद्यपि आज का मानव अन्तरिक्ष कि यात्रा में सफल हो गया है हिमालय के सर्वोच्च शिखर एवरेस्ट में

वह अपनी यश पताका लहरा चुका है इतना ही नहीं उसने चन्द्रलोक तक कि सफलता पूर्वक यात्रा सम्पन्न कर ली है और अन्य ग्रहों में पहुंचने के प्रयास चल रहे हैं यह सब कुछ तो हो ही रहा है किन्तु आधुनिक तकनीकी और विज्ञान की कृपा से सारा विश्व एक घर सा बन गया है आज हम अपने घर में बैठे-बैठे संसार के किसी भी नगर में बसे हुये अपने आत्मीय जनो से एक क्षण में सन्लाप कर सकते हैं श्रुति का एक वाक्य खण्ड है।

यत्र विश्वं भवत्वेक नीऽम् अथवा 'वसुधैव कुटुम्कम् अर्थात जहाँ सारा संसार एक घोसला बन जाता है अथवा सारी पृथ्वी एक कुटुम्ब है आधुनिक शीर्षस्थ राजनेताओं के प्रसाद एवं सूझबूझ से वैश्वीकरण कि प्रक्रिया तीव्रगति से चल रहा है।

निश्चय ही एक दूसरे के समीप आना अत्यन्त श्रोमन है और श्रेयस्कर भी हमारे पूवर्जो ने तो इस मार्ग को बहुत ही पसन्द किया था यदि ऐसा सचमुच हो रहा हैं तो विश्वशान्ति और मानव कल्याण का लक्ष्य बहुत ही समीप कहा जा सकता है संसार में जब सभ्यता का क,ख,ग भी नहीं आरम्भ हुआ था सहस्त्रों वर्ष पूर्व हमारे पूर्वजों ने इस तात्विक समाधान से अवगत हो चुके थे ईशावास्योप निषद कहती है

'ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किन्ध जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुअंजित्षाः मा गृधः कश्य चिद् सुवद् धनम्।।
(ईशावास्योनिषद श्लोक)

अर्थात यह सारा विश्व ईश्वर का ही आवास है सारांश है कि संसार के सभी प्राणी एक है इसलिये समाज से अवशिष्टा का ही भोग करो लोभ दृष्टि मत करो क्योंकि धन किसी का नहीं हैं श्रीमद् भागवत का भी यही उद्घोष है

यवाद भ्रियेन जठरं तावत स्वतवं ही देहीनाम्।
अधिकं योडभिमनयते स स्तेनो दण्डमर्हति।।

अर्थात जितने से अपना उदर भर जाये प्राणी का उतने पर ही अधिकार है वो अधिक कि चाह करता अर्थात संचय करता है वह चोर है उसे दण्ड मिलना चाहिये गीता में भगवान श्रीकृष्ण मुक्त कण्ठ से इसी को कहते हुए कहते है।

इष्टाम्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

तैर्दत्तान प्रदायैश्यों यो मुड्.क्ते स्तेन एव सः।।

(गीता ३/१२)

अर्थात यज्ञ के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुम लोगों को बिना मांगे ही इच्छित फल निश्चय ही देते रहेगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगों को जो पुरूष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है वह चोर ही है।

मनुस्मृति में भी यही बात कही गयी है 'यों व्यर्थ्ज्ञ शुचिः सर्व शुचिः' अर्थात जो व्यक्ति ध्न के संचय में पवित्र है वही सर्वतोभावेन पवित्र माना जाता है कहने का तात्पर्य यह है कि ऋग्वेद कालिक ऋषियों से लेकर समाज के लिये समर्पण कि भावना मनु तक चली आती है।

गीता के सोलहवे अध्याय में देवीय एवं आसुरी प्रवत्तियों की चर्चा की गयी हे जहां एक ओर दैवीय प्रवृत्ति अभ्युदय निःश्रेयस्य का हेतु बनती है वहीं आसुरी प्रवृत्ति समाज के लिये संघर्ष, अशान्ति एवं तनाव का कारण होती है इस संदर्भ में एक पौराणिक कथानक अवधेय है कहा जाता है कि कश्यप ऋषि कि पत्नियों में एक अदिति थी जिसकी सन्तान आदित्य या देव कहलाये दूसरी पत्नी दिति के दायित्य या असुर हुए देव(सुर) गणों कि प्रवृत्ति त्यागमयी थी वहीं असुरो कि प्रवृत्ति भोग प्रधान थी परिणामतः इन दोनों वर्गों का तालमेल नहीं बैठता था इतना ही नहीं असुरो कि अपने पिता कश्यप के प्रति भी असंतोष की भावना थी उनका आरोप था कि उनके पिता देवताओं के पक्षधर हैं।

धीरे-धीरे यह बात महर्षि कश्यप तक पहुंची उन्होने असुरों की मिथ्या धारणा के निरसन के लिये एक उपाय सोचा एक दिन उन्होने पर्याप्त मोदक बनवाये एक भारी पा. में रखकर उन्होने देव और असुरो को आहुत किया पिता के आदेश से दोनों वर्ग यथा स्थान बैठ गये उनको देखकर श्री कश्यप

सर्वप्रथम असुरो से निवेदित किया कि पात्र में रखे हुए मोदको वे खा जाये किन्तु एक प्रतिबन्ध लगाया गया कि खाने के अवसर पर अपने हस्तजान (टिहुनी) को सीधा ही रखना होगा सुनते ही असुर लोग खाने के लिये तत्पर्य हो गये किनतु एक भी मोदक उनके भाई में नहीं जा सका क्योंकि हाथ के टेढ़ा न करने की शर्त थी परिणामतः असफल दैत्य एक ओर अपना सा मुंह लेकर बैठ गये।

अब श्री कश्यप के आदेश से देवताओं कि बारी आयी उन्होने हाथ को टेढ़ा किये बिना ही लम्ब हस्त किये एक दूसरे के मुंह में मोदक डालते हुए पात्र के सभी मोदक खा लिए यह कथानक वैदिक संस्कृत कि त्याग भावना को उजागर करता है।

यह लक्ष्य कर्म की बात है कि संस्कृत कि यह अविरल धारा हमारे देश में आज तक प्रवाहमान है प्रसाद कि कामायनी भी इसी की पुष्टि करती हैं। श्रद्धा मनु को सचेत करती है-

क्यों इतना आतंक ठहरा जाओं गर्मीले,

जीने दे सबको सुख से फिर तू भी जी ले

इतना ही नहीं भारतमाता ग्रामवासिनी कविवर पन्त की उक्ति के अनुसार भारत के ग्रामीण अंचलों यह परम्परा आज भी यथावत चल रही हैं

गवई गांव कि अपढ़ गवांर वृद्धा इसी देवमंदिर में जाकर माथा टेकने के पश्चात कहती है हे देव सब के बाल बच्चों को सुखी रखना और इसके पीछे मेरे भी पुत्र पौत्रों को। किन्तु पाश्चात शिक्षा-दीक्षा प्रदूषित नागरिकों कि अत्याधुनिक तथाकथित सभ्यता मे यह धारा क्षीण ही नहीं सूखती जा रही है। अत्याधुनिक बनने जोश में वे लोग विदेशी से आयातित विचारों कि चकाचौंध में अपनी बहुमूल्य धरोहर भूलते जा रहे है कहना नहीं होगा कि आजकल के शिक्षित लोग भी बड़े गर्व के साथ विदेशों की संकीर्ण मान्यता को बखानते दीखते हैं पश्चिम की मान्यता है जीओं और जीने दो अर्थात पश्चिम की यह वैचारिक भूमिका है कि अपने जीने की व्योवस्था प्रमुख है यदि अपने जीने में कोई व्याघात नहीं है तो दूसरों को जीने देने में कोई क्षति नहीं है किन्तु यदि ऐसा नहीं है तो दूसरों के जीवन की कोई परवाह नहीं है इससे स्पष्ट है कि यह प्रवृति भारतीय दृष्टिकोण से सर्वथा विपरीत है।

इसी मिथ्याधारण के कुपरिणाम से आज विश्व में संघर्ष बेचैनी एक दूसरे से संत्रास तनाव आदि व्याप्त है इतना ही नहीं सभा समितियों में विद्यवानों, साधु सन्तो नेताओं आदि के भाषणों में यह बात सुनी जा सकती है कि यह समय ईमानदारी का नहीं है परिणामतः नैतिक भावना रसातल की ओर चली जा रही हैं राजनेताओं की तो यह घोषणा है कि राजनीति में सब कुछ चलता है इसी से राजनीति में सब कुछ चलने के कारण भारत जैसे विवेकशील देश में प्रधानमंत्री को अभियुक्त होकर न्यायालय के कटघरे में खड़ा होना पड़ता है प्रत्युत न्यायमूर्तियों द्वारा दण्डित भी होना पड़ता है मुख्यमंत्रियों के लिये तो यह सामान्य सी बात हो गयी है कि महामति कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में जो विश्व में राजनीति का विष्णुत ग्रन्थ है लिखा है कि राज्य का मूल धर्म है। भगवान व्यास ने भी यही बात कही थी किन्तु वैदिक संस्कृति कि प्रखर धारा महाभारत काल तक क्षीण होती जा रही थी तभी तो व्यास के शब्दों में निराशा का स्वर है वे कहते हैं-

'ऊर्ध्व बाहुं विओमयेष नच कश्चित् श्रणोति मामं।

धर्मा दर्थश्च कांमश्च सधर्मः किमं न सेवते।। अर्थात श्री द्वैपायन व्यास कहते हैं कि मै भुजा उठाकर पुकार रहा हूं किन्तु मेरी बात कोई सुनता नहीं है धर्म से अर्थ और काम कि पूर्ति होती है तो धर्म को क्यों नहीं अपनाया जा रहा बात स्पष्ट है धर्म के नाम पर जाति एवं सम्प्रदायों कि संकीर्णता ने वैदिक संस्कृति को विकृति रूप में प्रस्तुत करने का इतना कुचक्र रचा कि धर्म प्राण भारत में भी वास्तविक धर्म की शंका कि दृष्टि से देखा जाने लगा देश के स्वतंत्र होने के पश्चात सेकुलर स्टेट का वास्तविक भाषान्तर ने होने के कारण जाति सम्प्रदाय निरपेक्ष के स्थान पर धर्म निरपेक्ष शासन कि मान्यता जोर पकड़ती गयी धार्मिक भावना की श्रोतस्विनी सम्प्रति इतनी सूख गयी है कि निराला के स्वरों में स्नेह निरझर बह गया है, 'रेत सा तन रह गया; यह स्थिति हो गयी है जो चिन्तनीय है।

वैदिक धर्म की अनुगूंज फैल रही है भारत के प्रख्यात चिन्तक एवं विद्वान मनीषि डा० विद्यानिवास मिश्र ने अपनी अमेरिका यात्रा के एक संस्मरण मे आंखों देखी घटना का वर्णन किया

है वे लिखते है कि अमेरिका में जिस द्रुतगति से वैदिक धर्म भारतीय कर्मकाण्ड का आचार-विचार, खान-पान का प्रचार-प्रसार हो रहा है। उससे हमें अपने देश की दयनीय धार्मिक दुर्दशा देखकर शर्म आती है वहां के गगनचुंम्बी देवमन्दिर जो नितान्त स्वच्छ एवं पवित्र स्थान के प्रतीक है वहां प्रायः श्रीमद्‍भागवत या अन्य पुराण अथवा वाल्मीकि रामायण आदि का परायण प्रवचन होते रहते हैं देवमन्दिरों में समाहित जनसमूहो का कीर्तन कानों को पवित्र करता रहता है इतना ही नहीं अमेरिका पर्याप्त संख्या में अनुसाक्षर मद्यपान आदि को तिलान्जिलि देकर शाकाहार एवं फलाहार कि ओर उन्मुख होता जा रहा है।

मैने अत्याधुनिक,धन सम्पन्य वहां के नागरिको से इस रहस्य को गहराई से समझने परखने कि चेष्ठा कि परिणामत निष्कर्ष यह निकला अमेरिकन लोग एड्स आदि भयानक रोगो से वचाव हेतु शाकाहार कि ओर ख्वि रहे है। तथा मानसिक तनाव से अत्यन्त त्रस्त होने के कारण भजन पूजन योगासन आदि कि ओर प्रयुक्त हो रहे है। जिससे उनको आन्तरिक शान्ति मिलती है।

यह बात तो डा०मिश्र की यथार्थ ही है साथ ही हमारे देश के तीर्थो मे भी पश्चिमी महानुभावो की जमात की   साथ ही हमार देश के तीर्था मे भी पश्चिमी महानुभावों की जमात कि जमात वाराणसी प्रयाग उज्जैन मथुरा वृन्दावन, अयोध्या आदि में सर्वत्र सुलभ है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत की निम्नांकित पंक्तियां पठनीय है वे लिखित है-

जग पीढ़ित रे अति दुःख से
जग पीढ़ित रे अति सुख से
मानव जग में बंट जाये,
दुख सुख और सुख दुख से

कहने का तात्पर्य यह है किह पश्चिम भौतिक सुखो से ऊब चुका है इसलिये वह विवेक प्रधान वैदिक धर्म की ओर उन्मुख हो रहा है जबकि हमारा राष्ट्र भौतिक सुखों की उपलब्धि में बेतहासा दौड़ लगाता हुआ पश्चिम के उच्छिष्ट भोजन से ही मिथ्या तृप्ति की टोह में है।

एक बात और है हमने ऊपर तकर्नीकी एवं वैज्ञानिक विकास की कुछ चर्चा की है मानव की सुख सुविधा के हेतु उसको हेय नहीं कहा सकता किन्तु विज्ञान इस दौड़ धूप में मानव का अध्यात्मिक पक्ष जो अतिशय अविवरणेय है उपेक्षित होता जा रहा है परिणामतः मानवीयता का ह्रास आत्म स्वरूप कि अवगति कि उपेक्षा के कारण बड़ी ही द्रुति गति से ह्रास होता जा रहा है विश्व बन्धुत्व और वैश्वीकरण जैसे महत्वपूर्ण शब्द अपना अर्थ खो चुके है आज का मानव बात समाजवाद की करता है किन्तु आज का जैसा व्यक्तिवाद अतीत के इतिहास में खोजे नहीं मिलता फलतः व्यक्तिगत व्यक्ति के स्वार्थपरिता आपस में इतनी टकरा रही है कि आज एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से आतंकित एवं आशंकित बन बैठा है यही कारण है कि वह संघारक अस्त्रों के विनास की भी बात करता है और साथ ही निर्माण भी करता जा रहा है यही कारण है कि आज का मनुष्य हिंसक पशुओं से भयभीत नहीं जितना एक मनुष्य दूसरे से संत्रस्त्र एवं संकाल है कुल मिलाकर सारांश यह है कि आज प्राचीन मर्यादाओं को कालातीत कहकर उनको ठुकराता हुआ ऐसे मकड़जाल में जकड़ गया है कि उसकी दशा दयर्नीय हो गयी है व्यक्ति कुटुम्ब समाज, राष्ट्र अन्तर्राष्ट्र सब जगह तनाव कि आग फैल रही है दिशाविहीन आध् ाुनिक पीढ़ी कि दश कटी हुई पतंग सी हो गयी है जिसका अनुमान भी लगाया जा सकता कि वह आकाश में किस कोने में पहुंचेगी।

यह विडम्बना किसी एक प्रदेश या देश की नहीं किन्तु विश्वव्यापी बन गयी है बात तो विश्वशान्ति की जाती है किन्तु विश्व के किसी न किसी कोने में युद्ध के बादल मंडराते ही रहते है। जिससे सवर्त्र अशान्ति तथा अंशकाये फैलने लग जाती है जब कोई देश दूसरे देश को अपने संघारक अस्त्रों के द्वारा संतस्त्र करने की घुड़की देता है तो भूल जाता है कि उसका यह दुष्प्रयास परोपघाती ही नहीं आत्मघाती भी सिद्ध हो सकता है किसी उर्दू कवि ने ठीक ही कहा है-

कुछ सोच समझकर के माचिस उठाइये
घर आपका सटा मेरे मकान से।

किन्तु अपने को सर्वमहान बनने की होड़ में उसके मन यह यथार्थ सूचना समझ में नहीं आती यह स्थिति उत्तरोत्तर इतनी बढ़ती जा रही है कि पूरे संसार का जनजीवन सुख शान्ति से कोसों दूर है यदि दुनियां के किसी एक भाग में ऐसी कुछ ऐसी कुचेष्टा होती तो सामूहिक राष्ट्र उसके समाधान की बात सोचते किन्तु इस संदर्भ में उर्दू के एक दूसरे शायर कि उक्ति याद आती है-

रोग जिन पौधों में था उनकी दवा दारू हुई

क्या कहा जाये सारा खेत बीमारी मे हैं,,

भूतार्थ तो यह है कि आज का संसार सोचता कुछ है करता कुछ है और जानकारी कुछ इस त्रिकोण संघर्स ने उसकी हालत खस्ता है कविवर प्रसाद ने ठीक ही लिखा है'

ज्ञान दूर कुछ, किया भिन्न है

इच्छा पूरी क्यों हो मन की।

एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की।

विडम्बना का समाधान तभी हो सकता है जब इन तीनों में एकात्मता हो किन्तु यह एकात्मता विज्ञान के द्वारा सम्भव नहीं है इसके समाधान के लिये सामूहिक चेतना को सोचना चाहिए।

हमने ऊपर विश्व की वर्तमान विसंगति कि कुछ चर्चा कि है इसके उत्तर में विद्यवानों के विभिन्न मतो कि चर्चा यहा अप्रासंगिक है इसके उत्तर में धर्मो रक्षितः के अनुसार धर्म का आशय ही श्रेयस्कर हो सकता है किन्तु किन्ही कारणों से से राष्ट्रीय चेतना से अलग-थलग पड़ गया है अध्यात्म या दर्शन भी एक उपाय है किन्तु उसका विनियोग सुकर एवं सहज नहीं है शासन के द्वारा विश्वशान्ति का स्पष्ट देखना मात्र दिखा स्पष्ट है मित्र राष्ट्र कि मैत्री भी अकिंचित कर सिद्ध हो रही है अन्ततः हमारी दृष्टि साहित्य कि ओर ही जाती है साहित्य में कान्ता सम्मित उपदेश व्यक्ति कुटुम्ब एवं समाज के परिष्कार में अभूतपूर्व श्रेयोविधान में सहायक होता है इसमें कोई विषंवाद नहीं है किन्तु आज दूरदर्शन तथा चित्रपट ने काव्य साहित्य को गौड़ बना दिया है आज व्यस्त मानव को मनोरंजन मात्र चाहिये आत्मिक

संधान नहीं है साहित्य के साथ एक बात और लागू होती है कि वह सहृदय के द्वारा आच्छादित होकर ही फलदायी सिद्ध होता है एक विद्वान ने लिखा है '

'संगीत चापि साहित्यमं सरस्वतैः स्तनद्‌यमा।''

एक मा पात मधुरं, अन्यं दास्वादनेऽमृतम्।।

ऐसी स्थिति में साहित्य कि अपेक्षा संगीत अधिक लाभदायी सिद्ध होता है क्योंकि वह बिना प्रयास के ही आनन्द प्रदान करता है परन्तु मात्र संगीत से यह समस्या का समाधान सम्भव नहीं है।

एतदर्थ संगीत को साहित्य कि सहायता लेनी पड़ती है एवम् संगीत को छन्दस या राग से अपने आप को चिरनवीन करना पड़ता तभी वह जनमानस में सप्रेषित होकर अभ्युदय तथा निश्रेयस का कारण बनता है।

चिन्ता का विषय तो यह है कि आज साहित्य ही नहीं संगीत भी प्रदूषित होता जा रहा है। पॉप संगीत ही इसका निदर्शन है। इसके लिये यह आवश्यक है कि छन्दः सम्मलित संगीत का ही उपयोग किया जाय यह निर्विवाद सिद्ध है कि आज के तनावग्रस्त जीवन के लिये संगीत परमौषधि है किन्तु मानव के विकास में काव्य साहित्य योगदान परमापेक्षित है उसमें भी छन्दस का पल्लू पकड़कर ही जनमानस अपनी अभीष्ट सिद्धि कर सकता है इसकी पदेनपदे अनुभूति होती है छन्दोविहीन काव्य साहित्य अपनी बौद्धिकता में भले ही आगे हो किन्तु वह हृदय को नहीं छूता जबकि बौद्धिक विकास के साथ ही साथ हृदय पक्ष का आश्रय भी परमापेक्षित है।

वैदिक ऋषियो ने इस तथ्य को समझा परखा था इसीलिये ऋग्वेद तथा सामवेद ये उनके उद्‌गार छन्दोबध्य है हमारे सिद्धान्त कि इससे भी पुष्टि होती है कि सामवेद में छन्दोवद्धता पहले है और गेयता तद्‌पश्चात गीतिस्तु समाख्या उक्ति का यही तात्पर्य है अन्त में एक बात और कह देना चाहती हूँ कि संस्कृत भाषा अपनी संस्लेषणात्मकता के लौकिक पक्ष को लेकर स्वनाम धन्य एवम भाषा के क्षेत्र में चरमोदार पाणिनी के व्याकरण को यथार्थतः न समझने के कारण मनचले कतिपय संस्कृतज्ञों कि ध

ाारणा है कि पाणिनी के नियमों में जकड़ी जाकर संस्कृत भाषा का प्रभाव अवरूद्ध हो गया विद्वान मनीषी मुझे क्षम करेंगे मै इस सच्चाई को उजागर कर देना चाहती हूँ कि यह धारणा सत् प्रतिशत भ्रान्ति है सच तो यह है कि महावैयाकरण शब्दतत्व पारदर्शी पाणिनी के प्रसाद से ही संस्कृत भाषा का प्रवाह सहस्त्रों वर्ष से आज तक निरन्तर गतिशील है भाषा के उच्चारण लेखन के सम्बन्ध में पाणिनी से उदार. शायद ही कोई दूसरा शब्द शास्त्री हुआ होगा उन्होने किस प्रदेश से पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण आदि में संस्कृत भाषा का कैसा प्रयोग होता है अपने सूत्रों में उसका स्वीकार किया है और ऐसे प्रयोगों के साधुत्व में अपनी सहमति या सम्मति प्रकट की है किसी शब्द के प्रयोग को शाकटयन शाकल्य भागुरि आदि अन्य व्याकरणोपस्कर्ता कैसा मानते हैं इसकी चर्चा भी उन्होने स्थान-स्थान पर की है।

प्रसंगतः यह बात इसलिये कहनी पड़ी कि संस्कृत के अध्ययन में यह मिथ्याभ्रान्ति जितना शीघ्र दूर हो सके अच्छी बात होगी।

मेरे इस शोध कार्य मे पस्तुत होने का इस प्राक्कथन में सुस्पष्ट कर दिया गया है उपेक्षित किन्तु अत्यन्त उपयोगी वेदांग छन्दःशास्त्र के अध्ययन से मुझे आत्मिक शान्ति मिली है आशा ही नहीं मेरा विश्वास है कि मेरे समान धर्मो संस्कृत साहित्य के प्रेमी इस अध्ययन से लाभान्वित होगें। विद्वान मनीषियों से मेरी यह प्रार्थना है कि मेरे इस बालचापल्य को क्षमा करेंगे एवं साहित्यिक क्षेत्र मे इसकी आंशिक उपयोगिता को देखते हुए इस शोध प्रबन्ध को सहानुभूति पूर्वक स्वीकृति देंगे।

अन्त में मै सर्वप्रथम इस शोध प्रबन्ध के निर्देशक आचार्य कृष्णदत्त चतुर्वेदी के प्रति आभार व्यक्त करती हूँ जिनके मार्गदर्शन के बिना इसकी पूर्ति सम्भव नहीं थी साथ ही उन विद्वान मनीषियों की भी मै कृतज्ञ हूँ जिन्होने मेरे इस कार्य में सहायता प्रदान किया। डा० विश्वम्भर दयाल अवस्थी डी०लिट्, एस०टी०ओ० ओंकार प्रसाद त्रिपाठी, प्रो० राजाराम दीक्षित, आचार्य रामकृपाल द्विवेदी, आदि विद्वानों ने यथासमय अपना योगदान कर शोधार्थिनी को अनुग्रहीत किया एतर्थ मै इन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ।

शोधकार्य का न केवल अवसर देकर प्रत्युत यत्र तत्र जाकर सामग्री संकलन में मेरे पति देव अशोक कुमार द्विवेदी इस कार्य में समधर्मिता अपनायी है, उनके प्रति मैं शीर्घान्विति हूँ मेरे अनुज चि० श्री आशीष कुंमार दीक्षित का सोउत्साह एवं सद्प्रेम सहायदान अविस्मरणीय है।

अतः मै आशीष को शुभ आशीष प्रदान करती हूँ भगवान वेद का एक प्रमुख अंग छन्दस का अध्ययन निश्चय ही प्रेय एवं श्रेय का साधन है किन्तु इसके साथ अध्येता को अपनी आधार निष्ठा सुदृढ़ बनाये रखना चाहिये मैं भगवती श्रुति के एक छन्द का स्मरण करते हुए इस प्राक्यकथन से विरत होती हूँ :-

आचारहीनं न उनत्ति वेदा,

यद्यपया धीताः सः षड्भि रंगेः।

छन्दांसयेनं मृत्युकाले त्यजन्ति,

नीऽमं शकुन्ता इव जात पक्षाः।।

विनयावनता

श्रीमती ऊषा द्विवेदी

श्रीमती ऊषा द्विवेदी

प्रथम अध्याय

प्रथम अध्यायः

विषयावतरण

(क) वेदों के छः अंगो में छन्दः शास्त्र की उपादेयता-

पणिनीय[1] शिक्षा में वेद के छः अंग बताये गये है

१- व्याकरण २- निरूक्त

३- कल्प ४- शिक्षा

५- ज्योतिष और ६- छन्दस्

महाभाष्यकार[2] ने भी कहा है कि ब्राह्मण को निरपेक्ष भारत से षडंय वेदों का अध्ययन करना चाहिये, यद्यपि वेद के अध्ययन में छहो अंगों की उपादेयता है जैसा कि किसी भी प्राणि के जीवन यापन में प्रत्येक अंग की अपनी-अपनी विशेषता होती है, किन्तु वेद के उक्त छः अंगो में छन्दस की सर्वाधिक उपादेयता इसलिये है कि वेद का वह आधार भूत अंग है।

वास्तव में वेद का अर्थ ज्ञान है भट्टो जी दीक्षित कि वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी के धातु पाठ में धातु विद् धातु जो ज्ञानार्थक है उससे वेद शब्द निष्पन्न्य होता है पाणिनी शिक्षा में वेद को एक पुरुष के रूप में कल्पित किया है और उसके प्रत्येक अंगो कि उपादेयता प्रदर्शित कि है। जिनमें हाथ पाद,नेत्र, श्रोत, चच्क्षु ध्राण कि कल्पना की गयी है यह निर्विवाद सिद्ध है कि प्राणि के प्रत्येक अंग की अपनी उपयोगिता होती है, अंगहीन मनुष्य अपूर्ण रहता है क्योंकि जीवन के क्षेत्र में प्रत्येक भांति के क्रिया-कलाप आते हैं जिनकी पूर्ति तभी हो सकती है जब किसी को उसके शरीर एवं उसका अंग ही सब कुछ नहीं हैं शरीर के अंग उपांग तो सामान्य उपकरण मात्र है जिनकी कर्मेन्द्री या ज्ञानेन्द्री संज्ञा दी गयी है किन्तु मानव की समग्रता में उसके मन, बुद्धि, आत्मा कि उत्तरोत्तर अधिक उपादेयता हैं जब वेद का अर्थ ज्ञान हैं जो आत्मा का स्वरूप है श्रुति में कहा गया है प्रज्ञानम ब्रह्म अर्थात प्रतिष्ठ

ज्ञान ही ब्रह्म है और अयमात्मा ब्रह्म इस अपर श्रुति के अनुसार आत्मा ही ब्रह्म है ऐसी स्थित में मानव का सर्वोष्कृष्ट स्वरूप आत्मा ही हैं इसीलिये आत्म स्वरूप का परिज्ञान पुरुष का चरम पुरुषार्थ माना गया है जिसको शास्त्र में मोक्ष, मुक्त, कवैल्य निरुवाण आदि के नाम से अमीहित किया जाता है यदि ऐसा है तो पुरूष के अंग उपांगो कि परिचर्चा नगण्य प्रतीत होती है।

बात तो यथार्थ है किन्तु अपनी-अपनी जगह पर शरीर, मन, बुद्धि कि भी उपयोगिता न कारी नहीं जा सकती यदि ज्ञान स्वरूप वेद का कोई साक्षात कार्य करना चाहता है तो उसके लिये शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्दस आदि अंगो कि परिकल्पना निराधार नही कही जा सकती यो तो परमार्थ में स्थावरजंगात्मक अनन्त कोटि ब्रह्मण्य का एक मात्र आधार सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्मय ही हैं किन्तु व्यवहारिक जगत में परमार्थ निरूपण के सदंर्भ में जो अणोरणियान महतो महियान् कहा जाता है उसको अवगत करने के लिये स्थूल उपकरणों कि भी अपेक्षा होती हैं महावैयाकरण भर्तृहरि ने वाक्य पर्दाय[3] के ब्रह्म काण्ड में एक जगह कहा है कि ज्ञान कि अवगत के लिये अज्ञान कि आवश्कता पड़ती है। इसी सिद्वान्त कि पुष्टि ईशावास्य उननिषद् भी करती हे उपनिषद का बचन है कि हिरण्यमय पात्र से सत्य का मुख ढका रहता है ।

यह हिरण्यमय पात्र असत्य नहीं तो और क्या है गोस्वामी तुलसीदास जी कि भी यही धारणा है बह कहते है 'ज्ञान कहे अज्ञान बिन आदि।

कविवर प्रसाद ने तो सत्य को ही रहस्य गर्भित बना दिया हे। बह कहते है।'और सत्य तू एक शव्द ही, कितना गहन हुआ है मेधा के क्रीडा पंजर का, पाला हुआ सुआ है।

तात्पर्य यह है कि आनन्दस्वरूप ज्ञानात्मक वेद के अवगाहन में छन्दस जिसको पाद की परिकल्पना से विभुषित किया गया है उसकी उपादेयता सर्वाधिक है क्योंकि व्योहारिक रूप में वह आधार स्वरूप है व्यक्ति अपने गनतव्य वर्त तक तभी पहुँच पाता है जब उसके दोनों पैर सहायक हो यही बात छन्दस कि भी, क्योंकि वह भाषा को हृद्य बनाकर वेद के परिज्ञान में सहायक होता है यही

कारण है कि वेद के किसी मंत्र के तात्पर्य जानने के हेतु उसके ऋषि देवता के साथ छन्दस का ज्ञान अपरिहार्य माना गया है।

छन्दस् का उद्भव तथा स्वरूप-

छन्दस् के उद्भव तथा स्वरूप के सम्बन्धमें यह जानना आवश्यक है कि छन्दस का सम्बन्ध भाषा के साथ जुड़ा हुआ है अधिक कहना तो यह उपयुक्त होगा कि भाषा का प्रत्येक अक्षर छन्दस कहा जा सकता है ऋक्प्रातशाख्य[4] में कहा गया है यदक्षरम तच्छ छन्दः अर्थात जो अक्षर परापश्यन्ति मध्यमा में ढलता हुआ वैखरि के रूप में मुख से निर्गत होता है वह छन्दस का रूप धारण कर लेता है, संसार की सारी सारी प्राचीनतम भाषायें जिनमें वैदिक या लौकिक संस्कृत प्रमुख है, अपने प्राचीन रूप में गये है यद्यपि वेद त्रयी मतें ऋक और शाम को गेयता की कृति है वह पद्य मार्ग हे उसके यजुष्य भाग को गद्य का स्वरूप मिला है किन्तु उसके प्रवाह में एक लयात्मकता है यही कारण है कि यजुर्वेद संधिता की प्रत्येक शार का अपने उच्चारण में आज भी गेय होकर ही पढ़ी सुनी जाती है। यही कारण है की वेद चतुष्टय का एक नाम जो प्राचीनतम है छन्दस् है भगवान पाणिनी ने अपने शब्दानुशासन में वेद को छन्दस के नाम सेअभि हित किया है अपने वैदिक व्याकरण की चर्चा में स्थान-स्थान पर बहुलम्ब छन्दस[5] सूत्र का अनेक बार प्रणयन किया है।

छन्द पादों तु वेदस्य उक्ति की चरितार्थता कहना नहीं होगा कि इस तरह छन्दस की उपयोगिता अक्षुण्ण है क्योंकि छन्दस को वेद के पाद स्वरूप में स्मरण किया गया है वेद शब्द अर्थ मीमांसा में अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी सम्मति व्यक्ति की है डा० रंजना ने अपने शोधग्रन्थ ब्राह्मण ग्रन्थ एक अनुशीलन में इसकी विस्तृत चर्चा की है वह लिखती है ' वेद शब्द मूलतः ज्ञानार्थक है। ऋक्प्रातिशाख्यं के वृत्तिकार विष्णुमित्र ने 'वेद' शब्द का अर्थ लाभ एवं ज्ञान दोनों ही रूपों में करते हुए कहा है- विद्यन्ते ज्ञायन्ते लभ्यन्ते वा एभिः धर्मादि-पुरुषार्थाः इति वेदाः अर्थात जिनसे पुरुषार्थचतुष्ट्य जाना व पाया जाय

वे वेद है व्युत्पन्न वेदभाषकार सायण ने कहा है-

अलौकिक पुरूषार्थोपायं यो वेत्यनेनेति वेदशब्द निर्वचनम्। इष्टप्राप्त्यनिष्ट परिहार योरलौकिक भुपायं यो ग्रन्थों वेदयति स वेदः अर्थात जीवन में इष्ट की प्राप्ति एवं अनिष्ट के निवारक में वेद साधनभूत उपायों का ज्ञान कराता है, शुक्लयजुर्वेद तथा स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी वेद का ज्ञानार्थ ही स्वीकार किया है पाश्चात्य विद्वानों उदाहरणार्थ, ग्रिफिद, मैक्समूलर, मैक्डॉनल एवं विन्टरनिज्म आदि ने वेद शब्द का ज्ञान अर्थ ही माना है इनके अनुसार वेद शब्द हिन्दुओं के एक प्राचीन प्रारम्भिक विशिष्ट साहित्य को द्योतित करता है विन्टरनिज्म ने वेद का अर्थ करने में न केवल ज्ञान पर बल दिया है अपितु वेद में पवित्र धार्मिक ज्ञान का अंकन होना बतलाया है। वैदिक वाड्मय न केवल आधुनिक भारत के लिये अपितु समूची मानवता के लिये प्राचीन भारत की सर्वोविशायिनी एवं अतिसमृद्ध धरोहर के रूप में अमर है, वैदिक साहित्य प्राचीनतम भारोर्पास साहित्य का मूल निदर्शन है, जिससे भारत की अध्यात्म प्रधान सभ्यता एवं संस्कृति की मनोरम झांकी दिग्तार्थ देती है।

मंत्र एवं ब्राह्मण दोनों भाग मिलकर वेद का प्रणयन करते हैं। सायण ने मंत्र ब्राह्मणात्मक शब्द राशि को ही एकीकृत रूप वेद कहा है- मन्त्र ब्राह्मणात्मकः शब्द राशिर्वेदः। अन्य सभी परम्परागतावादी विद्वानों की भी यही धारणा रही है, इस तरह हम देखते है की ज्ञान स्वरूप वेद के वास्तविक स्वरूप को समझने के लिये छन्दस की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है, मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणि इसीलिये माना जाता है, कि उसमें अपने कर्तव्याकर्तव्य का विवेक है, ज्ञान है इसीलिये महाभाष्यकार[६] ने लिखा है - न मानुषात श्रेष्ठ तरम हि किचिंत् अर्थात मानव से श्रेष्ठ इस जगत में कोई नहीं है क्योंकि उसमें और प्राणियों की अपेक्षा एक गहनीय विशेषता है वह है उसकी ज्ञान या बोध शक्ति इस ज्ञान के अर्जन में छन्दस की महती भूमिका है इसीलिये छंन्दस का अध्ययन मनन परमावश्यक है किन्तु शनिः शनिः वेद के इस अंग की गरिमा धूमिल हो गयी।

विज्ञान और धर्म-दोनों का ध्येय है जीवन को सुखमय बनाना। जीवन में किस तरह अधिक से अधिक सुख प्राप्त किया जा सकता है इसके लिये विज्ञान ओर धर्म दोनों ही प्रयत्नशील है। वस्तुतः हम

जो भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। वैज्ञानिक को अपने ढंग से सुख प्राप्ति के लिये साधन आविष्कृत किये हैं और प्राचीन ऋषियों ने विना उसके मार्ग में बाधा बने, आत्म निरीक्षण के द्वारा, जीवन में दुःखनिवृत्त का समाधान ढूंढते हुये आत्मस्वरूप को प्राप्त किया है। ऋषियों का सोचने का ढंग युक्त संगत का तत्य उसकी प्रणाली भी वैज्ञानिक थी। धर्म का तत्व सूक्ष्म है किन्तु वह कोई अज्ञेय रहस्य नहीं है। न उसमें किसी तरह कि भ्रान्ति है न निरर्थकता किन्तु आधुनिक युग में सामान्य व्यक्ति जब धर्म के विषय में सोचता हे तब उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। संसार के छोटे बड़े सभी देशों के धर्मों के सम्बन्ध मे विचार करने पर यही तथ्य सामने आता है और हिन्दू धर्म के विषय में तो यह विशेष रूप से प्रसिद्ध है।

आज की पीढ़ी सरलता से इस तथ्य को स्वीकार करती है कि हिन्दू धर्म एक मृत समाप्त प्राय धर्म है। इसका कारण यह है कि हिन्दू धर्म का विवेचन एक वृक्ष के रूप में किया है। यदि शीत ऋतु में हम किसी बड़े वृक्ष को देखे तो उसे हम पत्तियों, फूलों और फलों के अभाव के कारण मरा हुआ मान लेते हैं। किन्तु यदि उस वृक्ष के पास जाकर हम जरा सूक्ष्म निरीक्षण करे और देखे कि उसके तन पर कुछ परोपर्जावी जन्तु या छोटे पौधे है तो इस बात कि आवश्यकता नहीं रह जाती है कि हम पेड़ काट कर निश्चय करे कि पेड़ जीवित है या मृत क्योंकि परोपजीवी लतायें इत्यादि तभी तक उस पर चिपकी रहेंगी जब उसमे वनस्पति रस प्रवाहित हो रहा है। इसी बात से निश्चय हो जायेगा कि वृक्ष अभी जीवित है। इसी तरह यद्यपि हमारा हिन्दू धर्म मृतप्राय दिखाई देता है क्यों कि उसमें कोई नयी हरी भरी विचारों कि डाले नहीं दिखाई देती है और सुन्दर सुखपूर्ण जीवन रूपी फल नहीं दिखाई देते, तथापि यदि हमारा धर्म अंधविश्वासो व पाखण्डों को भी आश्रय देता है और रहस्यमय भ्रान्तिपूर्ण विचारों के जंगल से घिरा हुआ है, तो इसी तरह से निश्चित हो जाता है कि हिन्दू धर्म अभी जीवित है, मृत नहीं जिस तरह छोटे-छोटे परोपजीवी जन्तुओं या पौधों को साफ करके उचित खाद तथा जल से पोषण करके उसे वृक्ष को हरा भरा किया जा सकता है उसी तरह से हिन्दू धर्म को भी हम पुनर्जीवित कर सकते हैं यदि हम जान ले कि अंधविश्वासों की बाढ़ को हम कैसे रोक सकते हैं तो

श्रद्धा विश्वास युक्त संगत विचार तथा सततू प्रयत्न के द्वारा हम उसके पुनः जीवन दे सकते हैं। विवेक विचार के बिना केवल अन्ध-श्रद्धा या विश्वास से कुछ नही होगा। केवल अन्धविश्वास की नींव पर ऐसे शाश्वत जीवन दर्शन नहीं बना करते जो दृढ, समृद्धिशाली ओजस्वी संस्कृति का परिचय करा सके।

सामान्य व्यक्ति जब भी किसी धर्म के सही रूप को जानना चाहता है तब उसे कुछ न कुछ भ्रान्ति रह ही जाती है और यदि कोई हिन्दू धर्म के विषय में विचार करता है तब उसे सवसे अधिक भ्रान्ति होती है क्योंकि इस पवित्र धर्म में कभी किसी को विचार की अभिव्यक्ति का बन्धन नहीं रहा है विश्व के अन्य धर्मो से इसकी तुलना करने पर यह उनसे भिन्न प्रतीत होता है और उसे उस तरह के धर्मो कि कोटि में रखा भी नहीं जा सकता है। हिन्दू धर्म का सही निरूपण एक प्रगतिशील नित्य नयी विचार धाराओं से पोषित विकासोन्मुख परम्परा के रूप में ही किया जा सकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अधिक से अधिक चारित्रिक उन्नति तथा आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करने का अवसर दिया जाता है प्राचीन जीवन द्रष्टा ऋषियों ने जान लिया था कि मात्र पाद विक्षेप में पुष्प प्राप्त नहीं होगे, अपितु वृक्ष का स्वतंत्र रूप से खाद-जल इत्यादि से पोषित करने पर ही सम्पूर्ण अनुकूल परिस्थितियों में उसमें असंख्य फूल अपने आप खिल उठेंगे।

किसी भी जाति के धर्म को पूर्ण रूप से समझने के लिये तत्कालीन इतिहास को जानना आवश्यक होता है। महान आर्यजाति अफगानिस्तान तथा उत्तर पश्चिम की ओर से भारत की सीमा पार करके सिन्धु नदी से सींची गयी हरी भरी घाटी में धीरे-धीरे आ बसी थी। सिन्धु घाटी में बसने के कारण पाश्चात्य जनो ने इस जाति को "हिन्दू जाति" का नाम दिया था। इस तरह हम देखते है कि "हिन्दू" यह नाम एक भौगोलिक क्षेत्र की ओर इंगित करता है जहाँ पर एक मानव समाज का अपना जीवन यापन करता था और जहाँ उसने अपने विचारों के अनुरूप एक संस्कृति का निर्माण किया था।

धीरे-धीरे गंगा घाटी पार करते आर्य जाति अपने वैदिक संस्कृति के साथ दक्षिण में जा पहुँची। अपने इस विस्तार से उन्हे कभी हिंसात्मक तरीको तलवार या वर्बरता पूर्ण कार्य का सहारा नहीं लेना पड़ा।

बल्कि वे सदा भाई-चारे के साथ शान्तिपूर्ण ढंग से स्थानीय जातियों के साथ अपनी परम्पराओं और विचारों का आदान-प्रदान करके मिले। उस समय द्रविण जाति के अतिरिक्त अन्य कई जातियां भारत में रहती थी। आर्यजाति ने सबसे सम्पर्क स्थापित किया। सबकी संस्कृतियों को परखकर जो कुछ उसमें ग्रहण योग्य था उसे स्वीकार कर लिया और उस समय कि आदिवासियों की जाति को कहीं अधिक विकसित सुन्दर विचारो से मुक्त अपना जीवन दर्शन दिया।

इस तरह वैदिक युग में भिन्न-भिन्न जातियों की समस्याओं को समाधान आर्यो की नयी जीवन पद्धति के अनुसार शान्ति पूर्ण उपायों द्वारा किया गया, न विचारों का बहिष्कार करके या उनकी परम्पराओं को नष्ट करके। अब कभी आर्यों को यह अनुभव हुआ कि किसी देवता की पूजा या प्रचलित परम्पराओं में विकास के लिये प्रेरणा देने की सामर्थ्य नही रह गयी है जो उन्होने सामान्यजन की उस पूजा या परम्परा की भर्त्सना नहीं की वरन् उन्हे उसकी तुलना में वैदिक संस्कृति की आधारशिला के अनुरूप अधिक महत्वपूर्ण जीवन धारा से परिचित कराया। ये सब ऐतिहासिक तथ्य है जिन्हे प्राचीन भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध में शोधकार्य करने वाले विद्वानों ने स्वीकार किया है।

मानव मात्र की प्रकृति भिन्न-भिन्न है संसार के अनेक महाद्वीपों में फैले हुये मानव समाज की किसी एक मानव आकृति से दूसरे के साथ परिपूर्ण समानता, दृष्टिगोचर नहीं होती इसी भाँति किसी भी व्यक्ति की प्रकृति दूसरे के साथ परिपूर्णतः एकात्म नहीं हो सकती फिर भी सतही तौर पर इन्द्रीतत्व वेदताओं ने वर्गीकरण का प्रयास किया कुछ व्यक्ति भावना प्रधान दूसरे तर्क प्रधान और तीसरे वर्ग में भावना तर्क का समन्वय जैसा देखा जाता है। हमारे वैदिक ऋषि इसका साक्षात्कार कर चुके थे, यही कारण है कि ऋषियों ने जिन मंत्रों की अनुभूति की और उनको वैरवरि के रूप में श्रव्य काव्य तथा पाठ्य बनाया वे विधा विभक्त हैं कतिपय उपासना मूलक, कुछ ज्ञान मूलक तथा शेष कर्ममूलक हैं इसीलिये वेदों के व्याख्याता वेद को ज्ञान काण्ड, उपासना काण्ड तथा कर्मकाण्ड के रूप में वर्गीकृत करते है।

यद्यपि वेदत्रयी ज्ञानकर्म एवं उपासना के भेद से त्रिधाविभक्त हैं फिर भी मानव उचित सहज

प्रकृति हृदय प्रधान है मानव शिशु अपनी माँ के गोद में जो लोरिया सुनता है उसका उसके जीवन में बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है आगे चलकर उसकी संगीताभिरूचि देखने योग्य है बाल्यावस्था पार करने पर उसकी भाषा में शिशुकालीन संगीत कि प्रभाव अग्निता बढती ही जाती है भाषा में जो एक प्रकार कि लयबद्वता होती है बह प्रत्येक व्यक्ति कि उच्चारण शैली को प्रथक -प्रथक करती है संगीत में तो यह सुस्पष्ट ही दीखती है साथ ही किसी भी प्रवक्ता के भाषन में,अधिवक्ता के अधिभाषण यहाँ तक कि क्रोधोत्पन्न दो व्यक्तियों के प्रलाप में भी यह विशेषता देखी जा सकती है जो यही संगीत वर्धता, लय या भाषिक प्रवाह छन्दस का प्राण है इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि छन्दस की जड़े मानव जीवन में कितनी गहरी है, सुखात्मक अनुभूति में यह छन्दोमयता तो दृश्यमान है ही दुखात्मक अनुभूति भी इससे अछूती नहीं है इसी शिशु का रोदन या तरूणी विधवा के विलाप में भी यह ओत प्रोत रहता है। परिणामता मानव ज्ञान में भी विज्ञान की भले ही उत्तरोत्तर बढ़ोत्तरी हुयी हो किन्तु उसका दूसरा पक्ष ज्ञान पीछे रह गया।

वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाग्ङ्मय में छन्द शास्त्र की मीमांसा

ऊपर यह चर्चा हो चुकी है कि वेद का एक नाम छन्दस भी है छंदयति आह्लादयति इति छन्दः इस निरूक्ति के आधार पर यह अभिप्रेत है कि जो श्रोता ससक्ता के चित्त के आह्मदयति करें वह छन्द है इससे यह स्पष्ट होता है कि भाषा जो स्वन उत्पन्न करती है, वही प्रवाह या लय का रूप धारण कर हमारे अर्न्तमन को प्रसन्न करती है, ब्राह्माण ग्रन्थों से लेकर प्रतिशाख्यों तक वैदिक छन्दों के स्वरूप का परिज्ञान होता है, जिसका यथा समय उल्लेख किया जायेगा लौकिक संस्कृत में अनेक ऐसे ग्रन्थ प्रणीत हुए है। जिनमें छन्दों के लक्षण परिभाषित हुए हैं पिङ्गल सूत्र वृत्तरत्नाकर, छन्दोमंजरी, श्रुतबोध सुवृत्त तिलक आदि अनेक ग्रन्थ छन्दों के लक्षण तथा स्वरूप के परिज्ञान हेतु लिखे गये है यद्यपि छन्दः शास्त्र की उपयोगिता वेदांग होने के नाते बहुत बड़ी है किन्तु साहित्य के अन्य अंग, उपांगो में उलझ कर छन्द उपेक्षित होते गये कहा तो एक ओर के एक अंग व्याकरण के लिये महाभाष्य[७] में कहा गया की बारह

वर्ष में व्याकरण का यथावत परिज्ञान होता है वहीं छन्दों के प्रति शास्त्र जिग्यासुओं का उपेक्षा भाव बढ़ता गया जिस तरह शास्त्रीय संगीत में उनके भेद उपभेद होते रहे है यही स्थिति छन्दों की भी हुई परिमाणतः छन्दो ज्ञान विहीन साहित्य का अध्ययन जीवन को जितना सर्सित कर सकता है उसमें न्यूनता आने लगी इतना ही नहीं छन्दों के बन्धन स्वरूप मानकर उनकी उपेक्षा होने लगी जिसके कारण धीरे-धीरे साहित्य में एक मानसिक रूगुणत प्रविष्ट कर गयी की काव्यसाहित्य में छन्दों की उपयोगिता न के बराबर यहाँ तक कि छन्दों हीन या मुक्त वृत्त रचनाओं की भरमार होने लगी जिससे साहित्य का एक पक्ष निश्चिय ही अमूल्यन की ओर बढ़ गया।

भाषा में छन्द या पद्य की गरिमा सदैव से चली आ रही है हम ऊपर चर्चा कर चुके है कि संसार कि सारी प्रचीन भाषाऐं किसी न किसी प्रकार संगीतात्मक रूप धारण किये हुये थी।

लिखित ग्रन्थ के रूप में ऋक संहिता या ऋग्वेद सबसे अधिक प्राचीन है इस सिद्धान्त को विश्वभर को भाषाशास्त्री स्वीकार करते हैं ऋग्वेदिक भाषा में एक सहज छन्दोमयता है जिसमें प्रत्रिमता का लेश नहीं है संस्कृति इस तरह अपने वैदिक रूप में परमप्राचीन है लौकिक संस्कृति में भी छन्दः प्रवाह का प्रभाव यथावत् बना रहा यद्यपि सूत्र ग्रन्थ गद्य में लिखे गये है फिर भी उनमें एक लय बद्धता पायी जाती है भगवान पाणिनी के शब्दानुशासन मे भी यह प्रवृति दृष्टिगोचरित होती है। पाणिनी का एक सूत्र है पक्षी मस्य मृगानि हन्ति, दूसरा सूत्र 'परिपंथ च तिष्ठिति' इन दोनों सूत्रों के मिलाने से आधा अनुषटुप इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सूत्र ग्रन्थों मे भी छन्दस के प्रति कितना आग्रह रहा है।

धीरे-धीरे वह संगीत के संश्लेषण से विश्लेषित होती गयी किन्तु इससे छन्दों की गरिमा ह्रास भले ही हुई हो किन्तु उसकी उपयोगिता घटी हो ऐसा नही कहा जा सकता मनुष्य का स्वभाव है कि वह श्रुत या कथित वांङ्मय को अपनी स्मृति में असुरक्षित रखना चाहता है सारी ज्ञान सारी राशि की यही परिपाटी है कि वह विज्ञान के अभिवर्धन में सहायता मिले यह निश्चिय है कि भाषा का पद्यात्मक या छन्दों वध्य रूप जितना कंठस्थ रहता है उतना गद्य या मुक्त वृत्त कथ्य नहीं यही कारण है की प्राचीन काल से आज तक हमारा विविध वांङमय छन्दोवध्य है।

वैदिक साहित्य का अधिकांश भाग तो छन्दो वध्र्य है ही लौकिक संस्कृत में आयुर्वेद, धर्मशास्त्र, जयोतिष (गणित फलित) आदि सारा का सारा साहित्य छन्दोवध्र्य मिलता है, यहाँ का प्राचीन इतिहास महाभारत आदि काव्य वाल्मीकि रामायण अवध दस पुराण, कथा ग्रन्थ, कथा सरितसागर आदि सभी छन्दोवध्र्य है इतना ही नही इससे अधिक छन्दः प्रियता क्या हो सकती है की यहाँ के शिलाओं के उत्तीर्ण लेख ताम्र पत्र, दान पत्र, स्वर्णमुद्राओं में उत्कीर्ण वाक्य तक छन्दोमय है इससे बढ़कर छन्दस की उपयोगिता क्या हो सकती है?

छन्दस और संगीत की एकात्मकता एवं उसका जंनजीवन में सम्बन्ध

शास्त्र में या तो चौषठ कलाओं की बहुत चर्चा है, किन्तु कलाओं को परिगणित नहीं किया जा सकता क्योंकि जीवन में जो कुछ भी शोभन एवं हृदय परिष्कारक जो भी विधा है सब कला के अन्तरभूत है फिर भी आधुनिक विद्वानों में कलाओं का विभाजन यों किया है :-

१- ललित कला एवं

२- उपयोगी कला

हिन्दी के प्राख्यात विद्वान बाबूश्याम सुन्दर दास ने अपने साहित्य लोचन[८] नामक ग्रन्थ में इसकी विस्तृत चर्चा की है उपयोगी कला का क्षेत्र मनुष्य के भौतिक सुख साधन के रूप में ग्रहीत है सारे यंत्र (मशीन) उपयंत्र कृषि के साधन में उपयोगी उपकरण युद्ध आदि में उपयोगी अस्त्र शल्य क्रिया के हेतु निर्मित सामग्री आदि तो यदि आकर्षक एवं सुन्दर ढंग से निर्मित है तो वह उपयोगी कला के क्षेत्र में आती है ललित कलाओं में वह कला आती है जो भौतिकता के दृष्टि से उपादेय न हो फिंर भी मानव की सभ्यता संस्कृति आन्तिरिक जीवन मनोविकास, चित्त के आह्यलादन के जो हेतु होती है, वह ललित कलायें है उनके मुख्यतः पाँच भेद माने जाते हैं जो उत्तरोत्तर सूक्ष्म उत्कृष्ट तथा हृदयावर्जक है वह है

(१) स्थापत्य (वास्तु) कला

(२) मूर्तिकला

(३) चित्रकला

(४) काव्यकला

(५) संगीतकला

हम यहां विस्तार में न जाकर यह कहना चाहेंगे की ललित कलाओं में काव्य संगीत सर्वोत्कृष्ठ है काव्य की अपेक्षा संगीत अधिक सूक्ष्म है, काव्य व्यन्जन और स्वर पर आधारित होता है किन्तु संगीत मात्र स्वर पर आधारित होता है किन्तु संगीत मात्र स्वर पर निर्भर है, इसीलिये सूक्ष्मता की दृष्टि से काव्य से उत्कृष्ठ संगीत माना जाता है, एक विद्वान[६] ने इसकी परिपुष्टि में लिखा है कि काव्य के द्वारा शास्त्र उपेक्षित हो जाता है और काव्य भी संगीत के सामने टिक नहीं पाता कारण यह है कि काव्य के लिये एक चरबड की उपेक्षा होती है किन्तु संगीत आपात कर्णमधुर होता है ऐसी स्थिति में ललित कलाओं में संगीत की गरिमा सुस्पष्ट है।

उपर्युक्त कथन से सिद्ध होता है कि मानव के चित्ताह्लादन हेतु एवं मनोविकास के लिए संगीत की महती उपयोगिता है। फिर भी यह निश्चित है कि काव्य एवं संगीत एक दूसरे के अनुपूरक है क्योंकि काव्य छन्दोवधूय होकर ही संगीत के साथ ओत प्रोत होता है तथा संगीत भी छन्द के लय प्रवाह आदि से ही अनुप्राणित होता है, इस तरह इन दोनों का अन्योन्याश्रित है, इस तरह हम देखते है कि संगीत और छन्दस दोनों में एकात्मकता है और वह मानव जीवन के विकास में सर्वाधिक उपयोगी है, इसीलिये भर्तृहरि[१०] ने लिखा है कि जो व्यक्ति साहित्य संगीत कला से विहीन है पुच्छ विषाणु हीन पशु ही है उसकी आकृति मात्र मनुष्य की है, क्योंकि साहित्य संगीत हीन पशु मानव से अधिक पशु ही अधिक दृष्टिगोचर होता है, निश्चिय ही मानव की मानवीयता के विकास में इन दोनों का योगदान चिरकाल से है और निर्विवाद है की इसकी उपादेयता आये भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी।

वेदमंत्रों में ऋषि देवता के साथ छन्दस के विर्नियोग की उपादेयता :-

यद्यपि वेद अपोरूपेय माने जाते है क्योंकि वह किसी व्यक्ति विशेष के द्वारां निर्मित नहीं हुए

हैं प्रस्तुत वेदों को परमात्मा का विःविश्वास कहा जाता है जैसा की कहा गया है कि यस्य निः श्वसितः वेद फिर भी वेदों के स्वाध्याय में अद्भुत सावधानी बरती गयी है वेद मंत्रों के उच्चारण में धन जटा पटल आदि आठ प्रकारों का आश्रय लिया जाता है, जिससे उनके उच्चारण में सहस्त्रों वर्षों के पश्चात भी कोई अन्तर नहीं हो पाया एक कारण और भी है वेद का अपरियाय श्रुति है अर्थात वेदों के उच्चारण में लेखन वाचन की अपेक्षा श्रुति परम्परा का अधिक महत्व है गुरूमुख से सुनकर वेद मंत्र का तथैव उच्चारण बहुत ही प्राचीन परम्परा है जो आज तक जीवित है प्रत्येक वैदिक शाखा का उच्चारण सम्प्रदाय समागत है ऐसी स्थिति में वेद मंत्रो के ऋषि देवता तथा छन्द सम्प्रति भी निर्विवाद स्मृत होते है किसी भी वेदमंत्र के उच्चारण में ऋषि देवता तथा छन्द का विनियोग परमआवश्यक माना जाता है तर्भा उसकी तात्विक अनुभूति होती है।

वेद मंत्रो में विनियुक्त ऋर्षि गतऊ धातु से ऋर्षि शब्द निस्पन्द होता है निरूक्त[११] में ऋर्षेय दर्शनात कहा गया है अर्थात जिस ऋर्षि के हृदय में जिस मंत्र का साक्षात्कार हुआ वह उसका ऋर्षि माना जाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी मंत्र का कोई भी ऋर्षि कर्ता न होकर दृष्टा है इससे वेद के अपौरूषेय भी मर्यादा सुरक्षित रहती है और उनकी अनादिता भी यह ध्यातव्य है कि ऋर्षि कोई व्यक्ति विशेष नहीं अपितु तत् तत् ऋषियों के अभिधान का दूसरा ही तात्पर्य है डा. रंजजना मिश्र ने लिखा है मंत्रकृत का अर्थ मंत्र कर्ता न होकर मंत्र को प्रत्यक्ष प्रकट करने वाला है मंत्र अर्थात 'वाक' का अन्वेषण ऋषियों ने तप के माध्यम से किया या ऋषयों मन्त्र कृतो मनीषिणः। अन्वैच्छन् देवास्तपसा श्रमेण। ता देवी वाचं हविषा यजामहे सा नो दृधातु प्रकृतस्य लोके। इससे ध्वनित होता है कि ऋषियों के नाम चित्त की वृत्ति को इंगित करते है मानव को नहीं, इसलिये 'शतपथ' ब्राह्मण में ऋर्षि वशिष्ठ को प्राण (वायु) भारद्वाज को मन, जमदग्नि को चक्षु, विश्वामित्र को कर्ण (श्रोत) एवं ऋर्षि विश्वकर्मा को वाक कहा गया है- प्राणों वै वशिष्ठ ऋषिः मनो वै भारद्वाज ऋषिः। चक्षुर्वे जमदग्निः। श्रोतः वै विश्वामित्र ऋषिः वाग्तै विश्वकर्मषिः। ब्राह्मणों में व्यक्त निष्ठा के अनुसार वेद उन ऋषियों

के समक्ष प्रकट हो जाता है जो एतन्निमित तप ठान लेते हैं। यह भारतीय आस्था का एक अनुभूत तथ्य है।

'महाभारत' में अनेक स्थलों पर यह आया है कि गुरू जब अपने शिष्य के चरित्र व स्वभाव से संतुष्ट व प्रसन्न हो जाता था। तो उसे यह आर्शीवाद देता था कि वह वेदों का पूर्ण ज्ञाता व पटु हो जाय। यह वरदान शिष्य को अनायास ही सर्वाविद्या पारंगत कर देता था। इसका सीधा सादा यह अर्थ है कि वैदुष्य हेतु 'ज्ञार्नाजन क्रिया' नहीं अपितु गुरू कृपा अनिवार्य थी। अतः वैदिक साहित्य मानव बुद्धि जन्य न होकर दिव्य दृष्टि से स्वतः प्रस्फुटित हुआ माना गया। वेद मानव कल्पना की प्रसूति नहीं है, यह कथन तर्कसंगत भले ही न लगे किन्त अनुभूति की यही वास्तविकता है। अनुभूति सदैव दिव्य होती है।

यद्यपि आज का जगत तर्क प्रधान है तर्क वितर्क के द्वारा किसी तत्व का अन्वेषण यद्यपि बुरा नहीं है किन्तु बहुत सारी ऐसी रहस्य अनुभूतियां है जा मात्र बुद्धि के द्वारा अवगत नहीं हो सकती यद्यपि महाकवि प्रसाद ने कामायनी में लिखा है हां तुम ही हो अपने सहॉय जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरणजाये, एवमेव तथा बुद्धि ने भी अप्प्रभीतोभव का उद्घोष करते हुए इसी की पुष्टि की है किन्तु महावैयाकरण भरति हरि अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में एक श्लोक के माध्यम से यह अनुमान लगा ले कि आगे भी रास्ता समतल ही होगा और इसी आधार पर दौड़ लगा दे तो आगे के विषम मार्ग में उसका गिरना स्वाभाविक है तात्पर्य यह है कि मात्र अनुमान से कोई भी सिद्धान्त 'दोषहीन नहीं माना जा सकता इसके लिये विद्वान मनीषियों की अनुभूतियां अधिक कारगर होती है स्वयं वेद कि वेदता इसी लक्ष्य को लेकर अपनी अद्भुत गरिमा स्थापित किये हुये है कहा गया है प्रत्यक्षेणानु नुमत्वा यस्तु उपायों न बुद्धते येनं विदन्ति वेदेण तस्माद् वेदस्य वेदयता, अर्थात वेद का वेदत्व इसी में है कि जो रहस्य प्रत्यक्ष या अनुमान से नहीं अवगत किया जा सकता उसका परिज्ञान वेद से ही होता है।

यद्यपि आज का विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया हे फिर भी मानव जगत में कुछ ऐसे रहस्य है

जिनका समाधान विज्ञान के द्वारा सम्भव नहीं है।

यह मानव मस्तिष्क में मात्र अवतीर्ण होकर प्रत्यक्ष हुआ करती है। वैदिक देवता वेदों में ऋषियों के तात्विक विश्लेषण के साथ ही उनके वर्ण विषय की चर्चा भी आवश्यक है पश्य देवस्य काव्यम न ममार न जीर्यति के अनुसार समान धर्मा ऋषियों ने इस विराट जगत में ओत प्रोत परमान्मयतत्व के साक्षात्कार में जो उपलब्धि की वही वैदिक देवता है एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति के अनुसार एक ही परमतत्व को उन्होने अपनी श्वानिभूति के बल पर एक वैश्विक सौन्दर्य राशि को भूमि, अन्तरिक्ष तथा द्विलोक के विभेद से त्रिधा विभक्त कर प्रत्येक में ग्यारह-ग्यारह देवताओं के दर्शन किये यही देवताओं की तेतीस कोटियाँ है जो आगे चलकर भ्रान्तिवश तेतीस करोड़ कहा जाने लगी।

देवता शब्द दिबु क्रीडा विजगिषा द्युतिकान्ती गतिषु से निष्पन्न होता है जो प्रकाश का ऊपर पर्याय है वैदिक ऋषियों ने अपने अन्तः कर्ण में अपने दिव्य चक्षुओं के माध्यम से उनको अनुमति किया

आजकल देवी-देवताओं कि अवधारण कहाँ से कहाँ पहुँच गयी है आश्चर्य होता है आज का विज्ञान जो भौतिकी के आधार पर जड़ को ही सब कुछ मानता है उसकी दृष्टि में चेतन जड़ का विकास मात्र है जबकि वास्तविकता यह है कि चित शक्ति ही जड़ को ही सब कुछ मानता है उसकी दृष्टि में चेतन जड़ का विकास मात्र है जबकि वास्तविकता यह है कि चित शक्ति ही जड़ का आधार है सारा का सारा चराचर जगत का अधिष्ठान एक मात्र चेतना ही है उपनिषदों में एक अतिरोचक कथा आती है।

मरूत, वरूण और अग्नि देवता को यह अभिमान[१२] हो जाता है कि वही सर्वशक्तिमान है इसके अतिरिक्त कोई नहीं इन तीनो देवताओं के दुर्अभिमान को दूर करने के लिये सर्वज्ञव्यापक एवं सर्वाधिष्ठान ब्रह्म एक यक्ष के रूप में प्रकट होता है और उन देवताओं से प्रश्न करता है अग्नि से यह प्रश्न करने पर कि तुम कौन हो अग्नि देवता का उत्तर है कि मै सर्वसमर्थ अग्नि हूँ एक क्षण में संसार को भस्म कर सकता हूँ यह सुनकर एक तिनका (त्रण) सामने रखकर यक्ष ने कहा कि इसको जला दो एतद् दह अग्नि देवता ने सारी शक्ति लगा दी किन्तु उस तिनके को जला नहीं पाया इसके पश्चात

वरूण की बारी आयी वरूण देवता ने अपनी विशेषता प्रदर्शित की वह संसार को क्षण भर में अगाध जलराशि में प्लावित कर सकता है किन्तु यक्ष ने संकेत करने पर वर तिनके को जल प्लावित करना दूर गीला भी नहीं कर सका अन्त में मरूत कि बारी आयी उसने स्वाभिमान निवेदन किया कि वह क्षण मात्र पहाड़, वृक्ष आदि किसी भी को उड़ाकर कहीं भी फेंक सकता है।

किन्तु यक्ष के कहने पर कि इस तिनके को उड़ा दो वह उड़ा नहीं पाया उन सब का अभिमान चूर-चूर हो गया वास्तविकता तो यह थी कि ब्रह्म ने अपनी शक्ति छीन ली थी इसलिये वह शक्तिहीन होकर कुछ भी नहीं कर सके जिस तरह बिजली के बल्ब में कोई अपना प्रकाश नहीं होता विद्युतधारा के द्वारा बल्ब प्रकाशित होता है विद्युत का भण्डार तो कही अन्यत्र होता है किन्तु इस तत्व को जानकर अज्ञ बल्ब को ही प्रकाश का कार्य समझते है जो भूल है।

वैदिक धर्म में इस तत्व बहुत अच्छा निरूपन किया गया है वैदिक धर्म के अनुसार तत्व त्रिधा विभाजित है आदि भौतिक आदि दैविक एवं अध्यात्मिक देवताओं कि जो ११-११ तीन कोटिया बतायी गयी है वह आदि दैविक हैं जिनको पाश्चात शिक्षा दीक्षित महानुभाव नहीं समझ पाते भारतीय संस्कृति कि यह विशेषता है कि प्रत्येक पदार्थ में आदि दैविक शक्ति भी निहित रहती है वैदिक विविध देवताओं के विभिन्न रूपों का यही रहस्य हैं। ऋग्वेद मे जिन देवताओं की स्तुतियां है वह आदि वैदिक तत्व ही है किन्तु परमार्थतः वे सब अध्यात्मिक तत्व के रूप में एक है एकम सद् विप्रा वहुधा वदन्ति अर्थात एक ही सत्ता को विद्वान लोग विविध प्रकार वर्णन करत है उसका यही रहस्य हैं उषस, मरूत् इन्द्र वरून आदि इन्ही अधिदेवताओं का अन्तःसाक्षात्कार ऋषि अपने हृदय करते है जो छन्दो के माध्यम से वाणी में प्रस्फुटित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऋषियों कि इन अनुभूतियों का अनुबोधन का आधार छन्दस ही है इसीलिये यह वेद के पादे रूप में उपवर्णित है।

मरूत् इन्द्र वरून आदि इन्ही अधिदेवताओं का अन्तःसाक्षात्कार ऋषि अपने हृदय करते है जो छन्दो के माध्यम से वाणी में प्रस्फुटित होता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऋषियों कि इन अनुभूतियों का अनुबोधन का आधार छन्दस ही है इसीलिये यह वेद के पादे रूप में उपवर्णित है। वहीं वैदिक देवता

है, इन्द्र मस्त, वरूण उपम आदि उन्ही के विभेद है जो प्राकृतिक छटा सुषुमा के प्रतीक है।

छन्दस्-

ऋषियों ने अपने निर्मल अन्तःकरण में जिन-जिन देवताओं की स्तुति में उद्भाव प्रकट किये वह विभिन्न ध्वनि प्रवाहों लयो में विभक्त होकर छन्दस के रूप में प्रकट हुए कहना नहीं होगा कि ज्ञान स्वरूप वेद के पहिरया लोचन में इन तीनों की ज्ञान समन्वित अनिवार्य है, एक के बिना दूसरा की समपूर्ति पूर्ण असम्भावित है ऋषियों ने अनन्दाति रेक जो अपनी पश्यन्ति को वैरवश के रूप में परणित किया वही वैदिक छन्दों का श्रोत है, गायत्री त्रिष्टुक, अनुष्पक आदि छन्द इसी के प्रतीक है और आगे चलकर लौकिक संस्कृत एवं अनेक भाषाओं में इन्ही छन्दों को विकास होता रहा और आज भी हो रहा है, यह अवगत करना परमावश्यक है कि आत्म परिष्कार के लिये संगीत और काव्य अपरिहार्य और आगे भविष्य में भी इनकी महनीयता अक्षुण रहेगी।

ख- अभ्यान्तिरित विचार और बाह्य भाषा की समन्वित में छन्दस का योगदान-

व्यवहार जगत में सुविधा की दृष्टि से भाषा और विचार को पृथक-पृथक समझा जाता है महाकवि कालीदास[१३] ने पार्वती और परमेश्वर को बाक और अर्थ के रूप में स्वीकार किया है हिन्दी के विश्व कवि गोस्वामी तुलसी दास भी ने रामचरित मानस के बालकाण्ड में एक श्लोक में वर्णानाम् अर्थसंघानाम[१४] कहते हुए भाषा और विचार को विभिन्न रूप दिया है एक चौपाई की अर्धाली में भरी अक्षर और अर्थ की चर्चा की है किन्तु सच तो यह है कि सिद्वान्तः भाषा और विचार अथवा शब्द एवं अर्थ एकात्म है महावैयाकरण भर्त्रीहरि[१५] ने अपने वाक्य पदीय ग्रन्थ के ब्रह्मकाण्ड के अदिम्य श्लोक में स्पष्ट रूप से इसकी पुष्टि की है। जिसका सारांश यह है कि ब्रह्म स्वरूप शब्द तत्व ही अर्थभाव में विवर्तित होता है गोस्वामी तुलसीदास ने भी गिरा[१६] अर्थ जल बीची सम कहते हुए व्यावहारिक भिन्नतः को सैद्धान्तिक अभिन्नतः का रूप प्रदान किया है ऐसी स्थिति में विचार और भाषा की समन्विति में छन्द की एकरूपता सिद्ध है चाहे वह वैदिक ऋषि हो या परिवर्ती काल का कोई क्रान्ति दृष्टा कवि वह

अपनी अर्था प्रगति भिव्यक्ति के लिये किसी छन्द का यौं ही प्रयोग नहीं कर बैठता प्रत्युत सच तो यह है वर्ण विषय के अनुरूप ही छन्द उपयोग में आता है महाकवि कालीदास का मन्दाक्रान्ता छन्द में लिखित मेघदूत या वाल्मीकि का बसंत तिलका छन्द में वर्णित चन्द्रोदय कुछ अर्थ रखता है वस्तुतः स्वाभिप्रेत की अभिव्यक्ति में कथ्य जिस छन्द का अर्भिभाव करता है इसके लिये वही उपयुक्त था महाकवि क्षमेन्द्र ने अपने सुवृत्त तिलक नामक ग्रन्थ के एक अंश में बहुत ही सूक्ष्मतः के साथ इसकी प्रस्तुति होनी चाहिये सारांश यह कि भाषा और विचार की समन्विति में क्ष्न्दस की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण है गम्भीर साहित्यकार इस मर्म को अपने हाथ से जाने नहीं देता निश्चिय ही रचना धार्मिता में द्वन्दस के प्रति उपेक्षा भाव चिन्तनीय हैं।

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि भाषा विचार के साथ द्वन्दस का कवित्त भाव सम्बन्ध है द्वन्दस भाषा एवम् विचार में सम्बन्ध अनूस्यूत तो रहता हे साथ ही वह शब्द और अर्थ के सामंजस्य एवम् सुसम्बधता का हेतु भी है विसंखलित भाषा और अर्थ छन्दस के प्रभाव से ही सुश्रृंखलित तथा एकात्म बनते है जीवन के लालित पक्ष में चाहे वह साहित्य हो या संगीत द्वन्दस की प्रभविष्णुता अपरिहार्य है जीवन को सरस समरस एवम् शोभन बनाने में द्वन्दस का योगदान अनिवार्य है छन्दोविहीन साहित्य संगीत अपने नाम से भले ही पुकारा जाये किन्तु छन्द के विना उसकी प्रखरता सुस्थिर नहीं रहती छन्दो विहीन उक्ती नीरस गद्य के रूप में परिलच्छित होती है और नीरस गद्य के समान मनुष्य के जीवन को रसक्ता से चुत कर देती है सम्प्रति छन्दस के प्रति उपेक्षा भाव एवम् मुक्त वृत्त का आग्रह अति बौद्विकता की देन है परिणामतः मानव जीवन का हृदय पक्ष उत्तरोत्तर संकीर्ण होता जा रहा है आवश्यकता इस बात की है कि छन्दो गरिमा का खोया हुआ स्थान उसको फिर से मिले तभी जीवन में सामरस्थ एवम् स्वरस्य के दर्शन हो सकते है इस शोधग्रन्थ के लेखन का यह प्रमुख उद्देश्य है जिसका आगे पल्लवन किया जायेगा।

उद्घत तालिका

(१) पाणिनीय शिक्षा श्लोक संख्या ४१, ४२

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोअथं पठ्यते।
ज्योतिषामयन चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् सांग्ङमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते।।

(२) महाभाष्य प०आ०-
ब्रह्मणेन निष्कारणं षग्ङ्यो वेदांग्ङ धेयो ज्ञेयश्च्य।

(३) अंगुल्यादि प्रदानेन बालान मुपलालनं
असत्ये वर्तमनि सिथित्वा ततः सत्यम् समीहते।

(४) ऋ०प्रा० ५,३,२

(५) सिद्धान्त कौमुदी, स्वरवैदिकी प्रक्रिया के अनेक स्थल

(६) महाभा० आ०प०अ ११ श्लो० १०

(७) महाभा०, प०अ० पृष्ठ २७
द्वादशभि वर्षे व्याकरणं श्रुवयते

(८) साहित्यालोचन पृष्ठ सं० ५७

(९) काव्येन अन्यते शास्त्रं काव्यं गीतेन हन्यते
गीतं नारी विलासेन, सुधया, सोऽपि हन्यते
(संस्कृत सुक्त सुधा)
अर्थात काव्य के द्वारा शास्त्र आहत होता है और काव्य संगीत के द्वारा, इसी भांति संगीत नवयुवतियों के विलास से आहत होता है किन्तु नारी विलास भी क्षुधा (भू) से आहत हो जाता है।

(१०) साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाणहीन त्रृणत्र खादत्रपि जीवभानस्तद्भाग धेयं परमं पशुनाम- (नीतिशतकम् १३ श्लोक)

(११) ४-५ निरुक्त

(१२) केनोपनिषद पृष्ठ सं. ५३ इषाद्न्नव उपनिषद (गीता प्रेस गोरखपुर से उद्धृत)

(१३) वर्गाथाविव सम्पृक्तौ. वागर्थप्रतिपत्तये,
जगतः पितरौ वन्धे पार्वतीपरमेश्वरौ।

(१४) वर्णानामर्थसंघानाम् रसानाम् छन्दसामपि
मंगलानां च कर्तारौ वन्दै वाणी विनायकौ
(रामचरित मानस बालकाण्ड श्लोक सं० १)

(१५) अनादि निधनं ब्रह्मशब्दतत्वं यदक्षरम्
विर्वतेऽर्थ भावेन प्रक्रिया जगतो यतः।
(वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड श्लोक सं. १)

(१६) गिराअरथं जलबीचिसम कहियत भिन्न न भिन्न
बन्दउँ सीताराम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न
(बालकाण्ड दोहा सं. १८)

द्वितीय अध्याय

द्वितीय अध्याय

वैदिक छन्दो मीमांसा

(क) यदक्षरं तत् छन्दः -

शोध ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में पाणिनी के अनुसार चदि आहलादने दीपतओ च धातु से असुन प्रत्यय करने पर छन्दयति आह्लादित करे या ज्ञान का प्रकाश करे उसे छन्दस कहा गया है ऐसी चर्चा की गयी है किन्तु छन्दस का एक अन्य अर्थ भी यास्क ने किया है छादनात छन्दः वैदिक ताहमय में छादयन्ति हवा एवम् छन्दांसि पापात्कर्मणः छादकत्व ही छन्द का सामान्य लक्षण है मन्त्रतेज छन्दः स्वरूप कवच से आच्छादित होता है।

यह वैदिक छन्दो का छादकत्व अत्यन्त गम्भीर विषय है इसी की ओर ऋक्प्रातिशाख्य की यह उक्ति संकेतिक करती है की यदक्षरं तत् छन्दः संक्षेप में इसका अभिप्राय यही है कि प्रत्येक अच्छर छन्दो गुण विशिष्ट है क्योंकि वह ज्ञान राशि का अच्छादन करता है या संगोपन करता है वेद में इसीलिये इस बात पर आग्रह किया गया है कि विना छन्दो ज्ञान के वेद मंत्र का स्वाध्याय न करना चाहिए क्योंकि छन्दो विहीन वेद का स्वाध्याय निष्फल तो होता है साथ ही पुण्य की अपेक्षा पाप का कारण होता है।

श्रुति ने तो छन्द ज्ञान के बिना वेदाध्ययन भी पाप बतलाया है जैसे योध्वा अविदितार्षेसछन्दो दैबलविनियोगेन ब्राह्मणेन मन्त्रेणयाज यति वाऽध्यापयति वास स्थाण्श्रुं वर्च्छति गर्त्त वा पघते प्रमोयते वा पापीयाप भवति यातवामान्यस्यच्छदांसि भवति" महर्षि कात्यायन ने भी कहा है - छन्दासि गायत्यादीन एतान्यविदित्वा योऽधीतेऽनुक्नूते जपति जुहांति यजते तस्य निर्वोर्य यातयाम भवति। अथान्तसुश्रगर्त वा पद्य ाते स्थाधुंवर्च्छति प्रमीयते वा पापीयान भवति। (पिडल सूत्र मे भूमिका से उद्घृत)

डा० रन्जना मिश्र इस संदर्भ में रंजना मिश्र के ब्राह्मण एक शास्त्रीय अध्ययन के ग्रन्थों का यह अंश उद्धरणीय है जिसमें यह अक्षरं तदः छन्दः इस उक्ति का सुस्पष्टीकरण हो जाता है वह लिखती है-

वैदिक वाग्ङ्मय में भाषा व शैली कि दृष्टि छन्द का महत्वपूर्ण स्थान है। वैदिक साहित्य का सूत्रपात ही छन्दों में हुआ है छन्द के बारे में कुछ गया है कि छन्द के बिना 'वाक्' उच्चरित ही नहीं होती। वैदिक काल से लेकर अबतक छन्दों का महत्व अक्षुण्ण बना रहा है। जमकीर्ति ने वैदिक व लौकिक संस्कृत दोनों के संदर्भ में लिखा है कि सम्पूर्ण वाङ्मय छन्दोयुक्त है। छन्द के बिना कुछ भी नहीं है। अक्षरों के द्वारा वाणी का नियमन ही छन्द है। यह तथ्य ऋषियों ने भी कहा है(अक्षरेण मिमते सप्तवाणी अक्षरेणैव सप्तवाणीः वागाधिष्ठितानि सप्त छन्दांसि मिमते निर्माणं कुर्वन्ति सामन) सतपथ ब्राह्मण के अनुसार वाक् से छन्दो की उत्पत्ति हुई।

ऋग्वैदिक मतो कि रचना मूलतः तीन प्रमुख छन्दो द्वरा की गयी है- गायत्री, त्रिष्टुप एवं जगती। ब्राह्मणों में अनेक सः छन्द सन्दर्भित है। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप बृहती, पंक्ति तिष्टुप शक्वरी तथा अतिछन्दस। छन्द के प्रत्येक श्लोक में अक्षरों की संख्या गिनार्या गयी है। सत् ब्राह्मण का कथन है कि गायत्री के एक पद में अष्टाक्षर हैं। गायत्री त्रिपदा, अनुष्टुप चार पदो से मुक्त तथा पंकि में पांच पद होते हैं अति छन्दस में अन्य सभी छन्दों की विशेषतायें विद्यमान रहती हैं अनुष्टुप को अन्य सभी छन्दों कि प्रतिष्ठा (आधार) बताया गया है।

गायत्री- गायत्री छन्द में मुख्यतः तीन पाद होते हैं प्रत्येक में आठ-आठ अक्षर होते हैं इस प्रकार इसमें कुछ चौबीस अक्षर होते हैं। यदा-कदा इसमें एक से लेकर पांच पाद तक होते हैं। इसीलिये इसके एकपदा, द्विपदा, त्रिपदा, चतुष्पदा और पंचपदा भी नाम है।

उष्णिक्- गायत्री छन्द के प्रथम मध्य या अन्तिम पाद में चार अक्षर अधिक हो जाने से उष्णिक छन्द होता है। अर्थात इसमें तीन पाद और २८ अक्षर होते हैं।

अनुष्टुप- इसमें ३२ अक्षर होते हैं इसमें स्पष्ट है कि उष्णिक (२८ अक्षर) में ४ अक्षर अधिक कर देने से यह छन्द निर्मित हुआ। इसमें तीन या चार पाद होते हैं। इन्ही पादों एवं अक्षरों की न्यूनाधिकता के कारण इसके अनेक भेद-प्रभेद होते है।

बृहती- अनुष्टुप छन्द में चार अक्षर बढ़ा देने से बृहती बनता है अर्थात ३६ अक्षरों से यह अनेक भेद-प्रभेद होते हैं। इस प्रकार इसके चार पाद और प्रकोष्ठ पाद में ६-६ अक्षर होते हैं। यह छन्द मात्रा कि दृष्टि से विवादास्पद है।

पंक्ति- बृहती में चार अक्षर बढ़ा देने से यह बनता है, अर्थात ४० अक्षरों का पंक्ति छंद होता है। इसमें भी चार पाद होते है। कभी-कभी पांच न्यूनता व आधिक्य से इसके भी अनेक भेद-प्रभेद होते है।

त्रिष्टुप- पंक्ति (४० अक्षर) के पादों में चार अक्षर से आधिक्य से आश्रेत ४४ अक्षरो से त्रिष्टुप छन्द निर्मित होता है। इसमें चार पाद और प्रत्येक पाद में ११-११ अक्षर होते हैं। इसके भी भेद-प्रभेद होते हैं यह ऋग्वेद का अति प्रचलित छन्द है।

जगती- त्रिष्टुप में चार अक्षरो की वृद्धि से जगती छन्द निर्मित होता है। इसमें चार पाद और प्रत्येक पाद में १२-१२ अक्षर होते हैं। पादों और अक्षरों की न्यूनाधिकता से इसके अनेक भेद प्रभेद होते हैं।

शक्वरी- इस छन्द में सात पाद होते है तथा प्रत्येक पाद में ८-८ अक्षर (७׳८ त्र५६ अक्षर) होते हैं।

तैत्तिरीय ब्राह्मण का कथन है कि प्रजापति ने षड्-होता बनकर मानस् सृष्टि के बाद गायत्री आदि छन्दों का सृजन किया। जैमिनीय ब्राह्मण का मत है कि प्रजाओं की कामना करने वाले प्रजापति ने अठारह अक्षरों का सृजन किया। छःछः की संख्या में यह त्रिवर्ण हुआ जो कि 'ऊँ' रूप गायत्री छन्द हुआ।

सतपथ ब्राह्मण के एक आख्यान में बतलाया गया है कि पूर्व में छन्दों के मात्र चार पाद होते थें। इन छन्दों में जगती सोम को लाने के लिये उड़कर गयी। वह अपने तीन पदों को छोड़ आयी। त्रिष्टुप सोम को लाने के लिये निमित्व उड़ा तो अपना एक पद छोड़ आया। इसी क्रम में गायत्री भी सोम को लेने हेतु उड़ी जो अपने पदों के अतिरिक्त जगती एवं त्रिष्टुप के पदों को भी सोम के साथ लाने में

सफल रही। इसीलिये गायत्री में आठ पद होते हैं। गायत्री में तीन चरण होते है इसीलिये इसें त्रिपदा भी कहा गया है। इस त्रिपद में भूः भुवः तथा स्वः त्रिलोक ऋक् जयुः वर्ण में साम की त्रयी त्रिदेवगण तथा यज्ञ की पूर्वोक्त त्रिरग्निनियां अन्तर्भूत है। ऋग्वेद के अनुसार शैशव, यौवन तथा जरारूप मानव जीवन की तीन अवस्थायें ही जीवन रूपी यज्ञ कि तीन समाधियां हैं। इन्ही की आहुतियां जीवन यज्ञ में समर्पित होती हैं। इस प्रकार गायत्री मनुष्य जीवन का यज्ञगर्भित दिव्याति दिव्य रूप है।

ब्राह्मण साहित्य में गायत्री गेय छन्द है जो व्यक्ति गायत्री छन्द (साम) का गान करता है वह गायत्री द्वारा संरक्षित होता है गायत्री छन्द में अनेक गूढ़ रहस्य निहित बताये गये हैं। गायत्री को प्राण कि संज्ञा दी गयी है। ज्योति रूपा (अथर्ववेदीय उपचार) विद्या के समविष्ट होने के कारण इसे (पृथ्वी को) भी गायत्री कहा गया है। इसी अथर्ववेदीय निदान विद्या के ही आधार पर अग्नि को भी गायत्री कहा गया है। गायत्री स्वयं ब्रह्म है। मन स्तत्व में जीवन-छन्द निवास करता है, ब्राह्मणों में प्रयुक्त छन्दस तत्व जीवन की समज्यसता (जय) का प्रतीक है। छन्द ऐसी प्रतीकात्मक लय हैं जिनमें पदार्थो की शाश्वत गतियां सन्निहित हैं।

छन्दों का नामकरण भी प्रतीकात्मक हैं। कभी-कभी ये संख्या का बोध कराते हैं। छन्दों के द्वारा ही कपालों की गणना की जाती है। प्रत्येक छन्द किसी न किसी देवता तथा वर्ण से सम्बद्ध करता हुआ करता है। उदाहरणार्थः गायत्री छन्द अग्नि देव तथा ब्राह्मण वर्ण से सम्बद्ध है। त्रिष्टुप इन्द्रदेव तथा क्षत्रिय वर्ग जगती विश्वदेवों तथा कैश्यवर्ण एवं अनुष्टुप छन्द वरुण अथवा प्रजापति देव एवं शुद्ध वर्ण से सम्बद्ध बतलायें गये हैं। इसी प्रकार देवों तथा वर्णो को विशिष्टतायें छन्दों मे भी परिलक्षित बतायी गयी है।

त्रिष्टुप को इन्द्रियं 'वीर्यम्' गायत्री, त्रिष्टुप तथा जगती को सत्य एवं अनुष्टुप को संध्यानृत कहा गया है। गायत्री एवं त्रिष्टुप जगती में अन्तर्निविष्ट होते हैं। जिसका तात्पर्य यह है कि इनका ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य से भी सम्बन्ध रहता है।

ब्राह्मणों में अनेक स्थलो पर यह कहा गया है कि वाक् एवं अनुष्टुप एक ही हैं। इस कथन का

यही अभिप्राय प्रतीत होता है कि अनुष्टुप सर्वाधिक विख्यात छन्द है, क्योंकि वाक् (वाणी) के प्रसार में यह नैसर्गिक रूप से स्वतः सम्मुख आ जाता है।

रिक एवं साम में प्रयुक्त छन्दो का आकलन एवम उनका क्रमिक विकास-

यह निर्विवाद है कि संसार की समस्त भाषाओं में परम् प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेद है इस सम्वन्ध में प्राच्य एवम पाश्चात्य मनीषियों में कोई मत वैषम्य नहीं है यह भी ज्ञातव्य है कि ऋग्वेद के ही अधिकांश मत सामवेद में परिगृहीत है ऋग्वेद की जो ऋचाऐ गेय है वहीं सामवेद के रूप में संकलित कर ली गयी है गीतिस्तु सामाख्या का यही तात्पर्य है कहने का अभिप्राय यह है कि वैदिक छन्दों के विवेचन में ऋग्वेद के छन्दों का ही अध्ययन वैदिक छन्दों का विवेचन यत्र तत्र प्रातिसाख्यो में या ब्राह्मण ग्रन्थों में प्राप्त होता है किन्तु वैदिक छन्दों का सागोपॉग लक्षण विवेचन पिंगलाचार्य के पिंगल सूत्र में उपनिवद्ध है आचार्य पिंडल ने वडी ही सर्तकता के साथ छन्दो के लक्षण एवम उनके विकास को अपने ग्रन्थ में एकल किया है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है की आचार्य पिडंल वैदिक छन्दों के अनुशीलन परिशीलन के प्रथम आचार्य है उन्होंने अपने पिंडल सूत्र में अपने पूर्ववर्ती अन्य आचार्यो का नामोल्लेख किया है इससे यह पुष्थि होती है की आचार्यो पिंडल के पहले भी वैदिक मंत्रों के उपजीवि हो चुके है पंडित नरायण शास्त्री खिस्त्रे ने इसकी पुष्टि भी की है यह तो निर्विवाद सिद्व है कि सारे जगत में सबसे पहले छन्द शास्त्र का उदय भारतवर्ष में ही मानना चाहिए।

कवि शब्द से काव्य शब्द कि उत्पत्ति होती है कवेरर्भाव कर्म व काव्य अर्थात कवि का भाव या कृतित्व ही काव्य है वेदो में कविर्मनीजी परिभूः स्वमभूः आदि उक्तिया काव्य का स्त्रोत कही जा सकती हैं अनेक पुराणो एवं ज्योतिष ग्रन्थो में कवि से तात्पर्य शुक्राचार्य से है श्रीमद् भगवतगीता में योगिराज श्री कृष्ण ने आचार्य शुक्ल[1] को कवि के रूप स्मरण किया है और अपना स्वरूप समर्थित किया है किन्तु उनकी गणना देवकवियों में की जाती है मानव कवियों में आदि गणना कवि वाल्मीकि सुप्रसिद्ध हैं क्रौन्च मिथुन के जोड़े में क्रौन्च के व्याध द्वारा वध किये जाने से अचानक महर्षि वाल्मीकि

के मुख से जो करुण वाणी निकली वहीं संसार कि पहली कविता प्रसिद्ध हुयी और महर्षि वाल्मीकि मानव जगत के सर्वप्रथम आदि कवि[2] है।

अब यह विचार करना है कि इस छन्दः शास्त्र का अच्छा प्रणेता कौन है। वेद के षड्ंगो में जो छन्द भी एक अंग कहा गया है उसके प्रणेता पिंगल है, किन्तु ये ही सबसे प्रथम आचार्य है यह कहना भी कठिन है क्योंकि पिंङ्गल ने अपने सूत्रों में कैटव, काश्यप आदि अनेक छन्द शास्त्र ऋषियों का उल्लेख किया है अर्थात पिंङ्ल के पूर्व उक्त ऋषियों का छन्द सम्प्रदाय प्रचलित था इतना ही नहीं श्री खिस्ते[3] ने छन्दःशास्त्र के प्रणेताओं के सम्प्रदाय क्रम को भी निदेर्शित किया है वे लिखते है कि छन्द शास्त्र के सबसे प्रथम आचार्य देवादि देव महादेव है, उनसे देवो के राजा को यह शास्त्र मिला उससे दुश्च्यवनओं दुश्च्यवन से सुरगुरू को सुरगुरू से माण्डव्य ऋषि को माण्डव से सैतव को, सैतव से यास्को, यास्क से पिंग्डल को और पिंग्डल से सारे जगत को यह शास्त्र मिला वेदांग छन्दस के लक्षण वेद स्वाध्याय में छन्दस का योगदान छन्दःशास्त्र की आचार्य परम्परा तथा वेद के प्रमुख छन्दों लक्षण निरूपण आदि के संदर्भ में डा० कृष्ण कुमार[4] ने अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है, वे लिखते है कि छन्द भी वेदांग है, वेदमंत्रों के उच्चारण के लिये छन्दों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है कारण वैदिक संहिताओं का अधिकांश भाग छन्दोबद्ध है, वेद मंत्रों का लय बद्ध गति का ज्ञान विशुद्ध रूप से हो सके इसी के लिये छन्द शास्त्र की आवश्यकता हुई।

इस ज्ञान का त्रिविध महत्व था, छन्दों ने वेद मंत्रों के शब्दार्थ के संरक्षण के लिये 'कवच' का सावार्य किया था। वे इनसे 'छादित' या 'आवतरित थे, यास्क ने अपने 'निरूक्त' में इसी अर्थ को ध्यान में रखकर छन्द पद की व्युत्पत्ति दी है- मंत्राः मननात्। छन्दासि छादनात। छन्दों के महत्व का यह पहला पक्ष था।

उनके महत्व का दूसरा पक्ष था उनके लयात्मक संगीत में र६जन वृत्ति का होना (कारक रूचिकर और कर्ण मधुर वाणी ही छन्दयति कृणाति सेचतेइति छन्दः प्रकारान्तर से जिस वाणी को सुनते ही मन आह्लादित हो जाता हो, वह छन्द है।

छन्दों को महत्व का तीसरा पक्ष था स्तुल्य देवताओं के प्रसादन में उनका सहायक होना ऐसी स्थिति में छन्द का वेदांग रूप में क्या स्थान है कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यही कारण है कि स्वम् वेदों में छन्दों के महत्व पर विशेष बल दिया गया है।

छन्दः शास्त्र का प्रवर्तन किसने किया कहना मुश्किल है पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार इस छन्दः शास्त्र के रचयिता भगवान शिव ही थे। अपने भाष्यग्रन्थ की एक पुष्पिका में यादव प्रकाश ने एक श्लोक उद्धृत करते हुए यह बतलाया कि देवगुरू बृहस्पति ने भगवान शिव से सर्वप्रथम छन्दोज्ञान प्राप्त किया था बृहस्पति से यह ज्ञान दुश्च्यवन इंदु और इंदु से माण्डव्य नामक सुरगुरू ने प्राप्त किया था ऋषिपुत्र सनत्कुमार भी इस शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था एक दूसरी अनुश्रुति के अनुसार छन्दःशास्त्र के आदि रचयिता पिंगलाचार्य या पिंगल थे।

छन्दों के विवेचन का जहाँ तक विवेचन का प्रश्न है, उसके दो वर्ग सीधे किये जा सकते है वैदिक छन्द तथा लौकिक छन्द। जहाँ तक वैदिक छन्दों का प्रश्न है वे वर्ण गणना पर आश्रित है, वर्णों के न्यूनाधिक्य से वैदिक छन्दों के अनेक भेद-प्रभेद निर्मित होते है प्रमुख वैदिक छन्द निम्नांकित है जो वर्णों के आधार पर भिन्न-भिन्न नाम रूप धारण करते हैं।

१-	गायत्री	२४ वर्ण
२-	उष्णिक	२८ वर्ण
३-	अनुष्टुप	३२ वर्ण
४-	बृहती	३६ वर्ण
५-	पंक्ति	४० वर्ण
६-	त्रिष्टुप	४४ वर्ण
७-	जगती	४८ वर्ण
८-	अतिजगती	५२ वर्ण
९-	शक्वरी	५६ वर्ण

१०-	अतिशक्वरी	७६ वर्ण
११-	कृति	८० वर्ण
१२-	प्रकृति	८४ वर्ण
१३-	आकृति	८८ वर्ण
१४-	विकृति	९२ वर्ण
१५-	संस्कृति	९६ वर्ण
१६-	अभिकृति	१०० वर्ण
१७-	उत्कृति	१०४ वर्ण

यह जानकर आश्चर्य होगा कि ऋषियों के विशुद्ध निर्मल अन्तःकरण में समय-समय पर जो छन्द उद्‌भूत हुए उनका ध्वनि तथा वर्ण विन्यास अत्यन्त अद्‌भुत तथा रहस्यपूर्ण तथा प्रभावकारी है गायांते त्रायाते इति गायत्री इस व्युत्पत्ति के अनुसार गायत्री छन्द वेद का सार तत्व समझा जाता है यह छन्दपरम तपस्वी विश्वामित्र का आविष्कार है जो ज्ञान विज्ञान का श्रोत है द्विजाति मात्र का यह कंठद्वार है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि शेष छन्दों की उपादेयता नगण्य है वे भी अपने आप में बहुत महत्वपूर्ण है।

अमंत्र मच्छरम नास्ति[5] के अनुसार प्रत्येक अक्षर किसी न किसी देवता का मंत्र है, किन्तु कठिनाई तो यह कि कौन सा अक्षर किस देवता के मंत्र में विनियुक्त होता है यह परिज्ञान सर्व सुलभ नहीं है यह निश्चय है कि मंत्र ही नहीं प्रत्येक शब्द या वर्ण का अपना अद्‌भुत प्रभाव होता है साधु प्रयोग से वह सदा फल दायी होता है। किन्तु उसका प्रतिकूल यह व्युत्क्रम विनियोग अनर्थकारी भी कम नहीं होता श्रुति में कहा गया है-

मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतोआ

मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थ माह

सः वाग्वज्जरों यंजमानं हिनस्ति

यथेन्द्र शत्रुः स्वरतोपराधात्[6]

महाभाष्यकार ने मंत्रोहीना के स्थान पर दुष्टः शब्दः का प्रयोग किया है जो अपने आप में यर्थाथ ही है क्योंकि शब्द ही तो मंत्र का रूप धारण करता है स्वर या वर्ण के त्रुटिपूर्ण उच्चारण से जो दोषजात उत्पन्न होते है वह किसी से छिपा नहीं है भाषा विज्ञान में स्वराघात् एवं बलाघात् का महत्वपूर्ण स्थान माना जाता है जो अर्थ की संगति में अपनी विशिष्ट भूमिका प्रस्तुत करता है।

वैदिक छन्दों की विकास परम्परा से औपनिषद छन्दों का परिशीलन -

वैदिक भाषा के समान वैदिक छन्दों का विकसित रूप भी इतना परिवर्तित होता गया की उपनिषदों में प्रयुक्त वैदिक भाषा जैसे लौकिक संस्कृत का रूप धारण करने लगी उसी तरह उपनिषदो में प्रयुक्त छन्द लौकिक संस्कृत छन्दों के साथ इतना सादृश्य रखते है की आश्चर्य होता है कठोपनिषद का प्रस्तुत छन्द देखिये जो किसी भी लौकिक संस्कृत छन्द की कितनी समानता रखता है।

प्र ते ब्रवीममि तदु में निबोध[7]

स्वर्ग्यमग्नि नचिकेतः प्रजानन्।

अनन्तलोकाप्तिमापो प्रतिष्ठां

विद्धि त्वमेव निहितं गुहायाम्।।

उपर्युक्त छन्द को गीता के प्रस्तुत से तुलना कैसे कर यह बात स्पष्ट हो जायेगी। कि उत्तरोत्तर वैदिक भाषा लौकिक संस्कृत में कैसे परिवर्तित हुयी।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं

समुप्रमावःप्रविशन्ति यद्वत्

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे

स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।

यद्यपि श्री मदभगवत गीता भी उपनिषदो कि गणना में परिगृहीत है जैसा कि हम देखते है कि गीतो के प्रत्येक अध्याय कि पुस्तिका में इति श्री मदभगवत'गीता सू पनिसश्सू पठित है किन्तु उपनिषदो कि भाषा वैदिक संस्कृत मानी जाती है परन्तु गीता कि भाषा लौकिक संस्कृत ही है यह निर्विवाद है कहने का तात्पर्य यह है कि ऋगवेद लेकर उपनिषदो तक जिस तरह भाषिक विकास देखा जाता है उसी भाँति छन्दों का विकास भी उत्तरोत्तर दृष्टव्य हैं।

ख- वैदिक छन्दों की उपयोगिता पर प्राच्य एवं पाश्चात्य मतों का विश्लेषण :

कहना नहीं होगा कि वैदिक छन्दों की प्रभु विष्णुता के सम्बन्ध में प्राच्य मनीषियों ने जो समय-समय पर चमत्कार प्रस्तुत किये है क्योंकि वैदिक मंत्रों के द्वारा पुत्रेष्टि याग करीरीयाग आदि के विनियोग से विस्मयकारी परिणाम प्रकट होते रहे है वैदिक छन्द अपने आप में कितने ऊर्जस्वल तथा प्रभु विष्णु है प्राच्य विद्वान इसमें र्निभ्रान्त है। इतना ही नहीं संगीत में अनेक राग दीपक आदि अपनी ध्वनियात्मक ऊर्जा से जनमानस को चमत्कृत करते हैं।

वैदिक छन्द का उपहास परिहास करते रहे है किन्तु शैनेः-शैनेः अनुशीलन परिर्शालन के पश्चात वे लोग भी प्राच्य विद्वानों के साथ एक मत है।

आरम्भ में पाश्चात विद्वानों ने वैदिक छन्दों के हास परिहास में समय नष्ट करते रहे किन्तु मैक्समूलर प्रसिद्ध विद्वानों ने जब ऋग्वेद का गम्भीर अध्ययन किया और उनके मंत्रों कि ऊर्जास्विता के दर्शन किये तो इसका प्रभाव अन्य विदेशी विद्वानों पर भी पड़ा और अब तो वेद मंत्रों कि शक्ति को पहचानकर वैज्ञानिक जगत में भी अनेक चमत्कार प्रस्तुत किये हैं। जबकि भारतीय आधुनिक विद्वान अपने प्राचीन विद्वान सायण प्रभृति का ही राग अलाप रहे यह बात अवश्य है कि इस क्षेत्र में वेदों के विशिष्ट व्याख्याता श्री सातवलेकर, स्वामी दयानन्द, योगिराज अरविन्द तथा वेदार्थ पारिजात के लेखक व्रह्मलीन श्री कल्पात्रि जी कि सेवाये भुलायी नहीं जा सकती इन विद्वानों ने वेद मंत्रों कि प्रभु विश्वसनियता आधुनिकता जगत के सामने रक्खा एवं छन्दों के चमत्कारिक प्रमाण को भी प्रस्तुत किया है।

उद्घत तालिका

(1) कवीना मुसना कविः

(भगवत गीता अ0 10 श्लोक सं. 37)

(2) मा निशाद प्रतिष्ठां त्व–मागमः सास्वतीः सभाः यत् क्रौञ्च मिथुना देक, मौधिः काम मोहितान्

(व0र0आ0का0अ0 3 श्लो0 सं. 13)

(3) श्री खिस्ते नारायण शास्त्री रचित छन्दः कौमुदी कि भूमिका से उद्धित

(4) डा0 कृष्ण कुमार विरिचित संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ सं. 132

(5) अमंत्र मच्छरं नास्ति, नास्ति मूल मनौषधम् आयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजक स्तत्र दुर्लभः

(संस्कृत सुधा से उद्धृत)

(6) पाणिनी शिक्षा श्लोक सं. 52

मंत्र जो छन्दोवद्ध होते हैं उसके त्रुटि पूर्ण उच्चारण भयानक परिणाम देखे गये है इस विषय में प्रस्तुत टिप्पणी अवबोधनीय है इसलिये कहा गया है कि चाहे भाष शब्द के स्थान पर मष शब्द का उच्चारण करना पड़े किन्तु छन्दोभंग न करना चाहिये। अन्यथा उसके भीषण दुष्परिणाम होते हैं।

टिप्पणी इस प्रकार हैं

पुरा किल विश्वरूप नामके त्वष्टुः पुत्रे इन्द्रेण निहिते, रुष्टस्त्वष्टा इन्द्रस्य हन्तारं पुत्रान्तरमुत्पिपादयिषुराभिचारिकं यागं कृतवान्। तत्रेन्द्रश त्रुर्वर्धस्वेति मन्त्र ऊहितः। तत्र तत्पुरुष युक्तान्तोदान्ततत्वे कर्तव्ये वहुब्रीहि प्रयुक्त आधुदात्त ऋत्विजा प्रयुक्त इत्यर्थान्तराभिं धानादिन्द्रेण सोअपि हत इति। अत्र शत्रुशब्दः क्रियाशब्दोंनतु अमित्रपर्यायो रुढ़ः। तदाश्रयणे हि बहुब्रीहि तत्पुरुषोरर्थभेदो न स्यात्। क्रियाशब्दत्वे इन्द्रस्य शातयिता भवेत्यर्थ बोधनाय प्रयोगे तत्पुरुष एव उचितः, बहुब्रीहो इन्द्रः शातयिता यस्ये त्यर्थः स्यादिति। तस्माद् शत्रुशब्दः क्रियाशब्दोअत्रेति। अत्र मन्त्रशब्दः शब्दमात्रपरः अन्यथा हितस्य मन्त्र भावेन तदसंगतिः स्पष्टैव।

7 कठोपनिषद्– 1/14

तृतीय अध्याय

तृतीय अध्याय

छन्दः शास्त्रीय ग्रन्थ

छन्दः शास्त्र के आदि प्रणेता से लेकर पर्वतीय आचार्यों के आधार पर छन्दःशास्त्र का विकास क्रम–

वेदांग्ङ छन्दस के अध्ययन में यह ज्ञातव्य है की पहले लक्ष्य ग्रन्थ सत्ता में आते है इसके पश्चात लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन होता है यह निर्विवाद सिद्ध है की वैदिक छन्दों का श्रोत ऋण तथा साम् की ऋचायें है उन्ही छन्दों को दृष्टि में रखकर ऋक्प्रातिसाख्य साख्यान श्रोत सूत्र और यत्र तत्र ब्राह्मण ग्रन्थों में छन्दों के लक्षण प्रारम्भिक संकेत मिलते है वैदिक छन्दों के पश्चात उपनिषदं महाभारत रामायण एवं अष्टादस पुराण तथा संस्कृत काव्याव्यम में लौकिक छन्दों का अवतरण होता है यद्यपि प्रतिसाख्यों से लेकर पिङ्लाचार्य के पिंङ्ल सूत्र के मध्य छन्दोलक्षण प्रणेता अनेक आचार्य हुए किंतु वैदिक और लौकिक छन्दों का प्रामाणिक प्रणयन पिङ्लाचार्य ने किया इसीलिये आजकल आचार्य पिङ्ल ही छन्द शास्त्र के आदि प्रणेता कहे जाते है यह आचार्य पिङ्ल कौन थे और इनका समय कौन सा है इसकी जानकारी के लिये हम डा० कृष्ण कुमार[1] के संस्कृत साहित्य का इतिहास का आवश्यक अंश यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

डा० कृष्ण कुमार कहते है छन्द शास्त्र के आदि रचयिता पिंगलाचार्य या पिंगल थे कतिपय विदेशी विद्वानों ने पिंगल को सम्राट अशोक का गुरू लिखा है पर यह एक भ्रान्त धारणा है। कात्यापन ऋकसर्वानुक्रमणी के वृत्तिकार षड्गुरूशिष्य ने वेदार्थ दीपिका में छन्द शास्त्र के रचयिता पिंगल को पाणिनि का अनुज लिखा है वर्तमान में उपलब्ध पाणिनीय शिक्षा को शिक्षा प्रकाश नाम्नी टीका के रचयिता का भी यही मत है। श्री युधिष्ठिर मीमांसक ने भी अपने संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास में इस मत की पुष्टि की है।

उपलब्ध पिगलसूत्र या छन्दः सूत्र के आधार पर पिंगलाचार्य आदि छन्दः शास्त्री भले हो पर छन्दःशास्त्र की परम्परा उनसे प्राचीनतर है स्वम् पिगलाचार्य के समय में छन्दःशास्त्र पर लिखे गये अनेक

ग्रन्थ प्राप्त थे जिनके अंशो एवं रचयिताओं का निर्देश उन्होनें यथास्थान किया है ये छन्दःसूत्राकार संख्या में ७ है क्रोष्टुकि, यास्क, ताण्डी, सैतव काश्यप, राट और माण्डव। इनमें राट और माण्डव के मतो का उल्लेख भट्ट उत्पल ने अपनी वृहत्संहिता विकृति में भी किया है।

छन्दःशास्त्र विषयक प्राचीनतम ग्रन्थ ऋक्प्रातिसाख्य की माना जाता है यद्यपि यह प्रधानतया शिक्षाविषयक व्याकरण ग्रन्थ है इसके अन्तिम भाग में वैदिक छन्दों पर प्रकाश डाला गया है जो अपने आप में नितान्त अपूर्ण है तत्पश्चात पिंगलाचार्य का छन्दःसूत्र प्राप्त होता है जो अपने विषय का उपलब्ध प्राचीनतम पौढ़ एवं सर्वांगपूर्ण ग्रन्थ है यह न केवल वैदिक छन्दों पर प्रकाश डालता है अपितु लौकिक छन्दों के विश्लेषण की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है इसी के आधार पर प्रस्तुत प्राकृत पिंगल है जिसका रचनाकाल १४वीं शती है इसमें प्राकृत छन्दों को विमर्श विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है पिंगल के छन्दसूत्र के पश्चात कालक्रम की दृष्टि से सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद बराहमिहिर आते हैं। अपने ज्योतिष विषयक ग्रन्थ वृहत्संहिता के एक अध्याय में छन्दों पर भी उन्होने प्रकाश डाला है तत्पश्चात स्वयम्भु आते है (ये यापनीय सम्प्रदाय के अनुयार्यी और अपभ्रंश भाषा के महाकवि थे इन्होने स्वयम्भु छन्द लिखा जो अपने अपूर्ण रूप में प्राप्त होता है। तत्पश्चात रघुवंशादि के रचयिता महाकवि कालिदास ने भिन्न किसी अन्य कालिदास या कालिदासों से प्रणीत दो ग्रन्थ वृत्तरत्नावली और श्रुतबोध प्राप्त होते है ८वीं शती में ही जनाश्रम द्वारा लिखा गया एक ग्रन्थ छन्दोविचरत प्राप्त होता है तत्पश्चात ११वीं शती में सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री क्षेमेन्द्र ने सुवृत्ततिलक की रचना की इसमें पूर्ववर्ती छन्दः शास्त्रियों का भी हवाला दिया गया है, इसी काल में आचार्य हेमचन्द्र ने छन्दोऽनुशासन लिखा। तत्पश्चात १५वीं शती में भट्ट केदार ने वृत्तरत्नाकर तथा दुर्गादास ने छन्दोमं६जरी १६वीं शती में दामोदर मिश्र ने वाणी भूषक तथा दुखभंजन ने वाग्वल्लभ छन्दो विषयक ग्रन्थों का निर्माण किया। वृत्तमकिकोश तथा वृत्तालंङगर इसी परम्परा की परिवर्ती कड़ियाँ है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक छन्दों के संकेत मात्र ही मिलते है ऋकप्रातिसाख्य के मात्र एक अध्याय में कतिपय वैदिक छन्दों की चर्चा है पर अपूर्ण हैं यही स्थिति निदानसूत्र की भी है जैसा की ऊपर कहा

जा चुका है की वैदिक एवं लौकिक छन्दों । यथावत संकलन लक्षण निरूपण पिंगलसूत्र में मिलता है वैदिक छन्दों के प्रमुख लक्षण रूपों की चर्चा ऊपर की जा चुकी है जो संख्या में सप्तदश है वैदिक छन्द वर्णों की गणना के आधार पर लक्षित हुए है और वैदिक छन्दों में नियंत्रण विनियंत्रण की संकीर्णता परिलक्षित नहीं होती यहाँ तक की छन्दस शब्द को लय एवं प्रवाह की दृष्टि से वेद का ऊपर परियार्य ही विश्रुत हो गया है पाणिनि ने अपने ग्रन्थ में सिद्धान्तः जो प्रयोग व्याकरण सिद्ध नहीं होते थे उनको छान्दस कहकर समाहित किया है इतना ही नहीं अपने सूत्रों को व्याकरण सम्वत् व्युत्पत्ति में न डालकर छन्दोवत् सूत्राणि भवन्ति कहकर निर्वाह किया है कहने का तात्पर्य यह है कि प्रारम्भिक काल में छन्दों का बन्धन स्वच्छन्द था इसीलिये वैदिक युग के मंत्रों या पद्यों में वैचारिक स्वतंत्रता छन्दों के भार से ग्रस्त नहीं दिखती किन्तु लौकिक संस्कृत के युग म्रें छन्दों का दबाव बढ़ता गया और यहाँ तक कहा गया कि अपि माँषम मंषम् कुर्यात छन्दो भंगम न कार्ययेत अर्थात चहे माँष के स्थान पर मष का प्रयोग करना पड़े किंतु छन्दोभंग न करना चाहिये यद्यपि यह यर्थाथ है कि छन्दो से नियमित वाणी श्रुतिमधुर एवम् अधिक हृदयम् हो जाती है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि छन्दों के विन्यास की जकट में भाषा एवं विचार का प्रस्फुटन अवरूद्ध हो जाये कहने का तात्पर्य यह है कि छन्दों की परिधि में भाषिक एवं वैचारिक स्वतंत्रता सुरक्षित रहनी चाहिये।

छन्दो निर्माण में आधारभूत कतिपय तत्वों का निरूपण

यह मानी हुई बात है कि नियंत्रित भाषा ही छन्द का रूप धारण करती है अर्थात भाषा ही छन्द का आधार होती है लेखक के हृदय में उठे हुए विचार कंठ में आते-आते भाषित ध्वनि बनकर छन्द के रूप में परिणत हो जाते है इस तरह हम देते है कि भाषा में उच्चरित ध्वनि जब कंठ से एक विशेष प्रकार कंठ से निगर्त होती है वही छन्द का ध्वनि वर्ण पद मालागण आदि छन्द के निर्माण में यौगिक का काम करते है इन्ही के भेद से छन्द में अनेक विधाओं के दर्शन होते है जैसे वृत्त, जाति, वर्णित छन्द मात्रिक छन्द आदि।

जाति और वृत्त के भेद से छन्दों के विविध प्रकार वर्ण गणना के आधार पर निर्मित छन्द वृत्त तथा माला के आधार पर निर्मित छन्द जाति की संज्ञा निर्मित करता है।

वर्ण और मात्रा-

कोई भी ध्वनि जो व्यञ्जन एवम स्वर के सहयोग से अंशतः उच्चरित होती है वह वर्ण का रूप धारण करती है एवं किसी वर्ण के उच्चारण काल में जो समय गृहीत होता है उसे मात्रा कहते है उच्चारण की दृष्टि से मात्रा के तीन भेद हो जाते है हस्व दीर्घ और प्लुत छन्द में प्लुत की उपयोगिता अकिंचित कर है किन्तु हस्व और दीर्घ की विशेष महन्ती है वर्षा की एक मात्रा को हस्व कहा जाता है किन्तु छन्द शास्त्र में इसकी लघु संज्ञा है इसी भाँति द्विमात्रिक दीर्घ होता है जिसको छन्दो जगत में गुरू की संज्ञा मिली है पाणिनी ने अपने दो सूत्रो में इसको परिभाषित किया है हस्व लघु दीर्घन्व इसके अतिरिक्त यदा कदा हस्व भी गुरू बन जाता है पाणिनी ने इसके लिये संयोगे गुरू की सूत्र की सृष्टि की है जिसका तात्पर्य यह है कि यदि आगे संयुक्ताक्षर हो तो पूर्व वर्ण को गुरू कहा जाता है यथा विष्णु शब्द में वि को गुरू कहा जायेगा इसके अतिरिक्त अनुस्तार और विसर्ग का पूर्ण वर्ण भी गुरू हो जाता है जैसे राम में मकार एवं घटः के पूर्व को गुरू कहा जायेगा जैसा की छन्दः शास्त्र में निर्दोष है की किसी भी छन्द में चार चरण या पद होते है इसीलिये छन्द का एक नाम पद भी है पदमर्हति इति पद्यम। यह ज्ञातव्य है कि पद के अन्त का वर्ण भी विकल्प से यदा कदा गुरू संज्ञा ग्रहण कर लेता है।

गणों की संख्या तथा स्वरूप- छन्द शास्त्र में छन्दों के लक्षण स्वरूप आदि के परिज्ञान में गण की बहुत बड़ा महत्व है। वैसे गण का अर्थ समूह होता है किन्तु छन्द शास्त्र में उसका एक विशेष प्रकार है तीन वर्णों के समूह से ही गण का निर्माण होता है जो संख्या में आठ है-

१- मगण

२- यगण

३- रगण

४– सगण

५– तगण

६– जगण

७– भगण

८– नगण

इन्ही आठ गणो को संक्षेप में मय रसत इनके स्वरूप परिज्ञान हेतु आचार्य पिङ्गल में एक सूत्र की रचना है यमाता राजभा न सलगम् इसकी प्रक्रिया इस तरह है कि जिस गण का स्वरूप जानना हो उसके आर्य अक्षर को पकड़कर दो अक्षर आगे के लेकर तीनों के लघु गुरू के परिज्ञान से गण का स्वरूप जानने के लिये यमाता, पकड़ लिया गया जिससे यह ज्ञान हो गया की यगण वह है जिसमें पहला अक्षर लघु हो और दो अक्षर गुरू इसी भाँति यदि मगण का स्वरूप जानना है तो सूत्र के म अक्षर के तीन वर्ण गहीत होंगे जैसे मातारा इससे यह जानकारी हुई कि मगण में तीनों अक्षर गुरू होते है इसी तरह आठों गणों की स्वरूप की पहचान की जा सकती है सूत्र के अन्त में ल और ग पढ़ने का तात्पर्य यह है कि छन्दःशास्त्र में लघु की संक्षिप्त संज्ञा ल है और गुरू की ग छन्द परिज्ञान में लघु और गुरू के संकेत के लिये क्रमशः ऽ तथा। का प्रयोग होता है,

इस प्रकार आठो का स्वरूप निर्धारण निम्नांकित होगा

१. आदि लघु, यगंण ।।ऽऽ

२. तीनो गुरु, मगण ऽऽऽ

३. अनूत्य लघु तगण ऽऽ।

४. मध्य लघु, रगण ऽ।ऽ

५. मध्य गुरु, जगण ।ऽ।

६. आदि गुरु, भगण ऽ।।

७. तीनों लघु, नगण ।।।

८. अन्त गुरु सगण ।ऽ।

समविषय अर्धसम् भेद से छन्द या विषम् रूप वृत्त या जाति दानों प्रकार के छन्दों में चार चरण होते हैं इन्हीं चरणों के भेद से सम विषय और अर्धसम भेद हो जाते है। जिस पद्य के चारों चरणों में गण समान ही रहे वह समवृत्त पद्य है जिसमें पहले और तीसरे, दूसरे और चौथे चरणों में गण समान हो वह अर्द्ध समवृत्त पद्य और जिसमें चारो चरणों के गण भिन्न-भिन्न हो वह विषम वृत्त पद्य है।

जाति अर्थात मात्रा वृत्त प्रायः अर्ध सम् अथवा विषयम रहते है गणवृत्तों में बसन्त तिलकादि वृत्त सम होते है पुष्टिताग्रा, वियोगिनी आदि अर्थ सम है। क्वत्र प्रथ्यावक्त आदि विषम है।

गति तथा यति

छन्दः शास्त्र में गति एवं यति का बड़ा महत्व है। गति तो छन्दस का प्राण ही है गति का अर्थ है लय था प्रवाह जिस प्रकार संगीत कला का आधार ताल होता है। इसी तरह छन्दस लय या प्रवाह पर ही आधारित है गतिभंग दोष छन्द के माधुर्य में अवरोधक होता है। मैथलीशरण गुप्त[२] के सुप्रसिद्ध भारत-भारती काव्य की प्रस्तुत पंक्ति में गतिभंग पाया जाता है। श्री राममोहनराय स्वामी दयानन्द सरस्वती इस पंक्ति में गति बनती है। श्री राममोहन राय स्वमी यादनंद सरस्वती किन्तु दयानन्द के नाम को ज्यों का त्यों लिखना अपरिहार्य था इसलिए जानबूझकर भी कवि को विवश होकर यह दोष स्वीकार करना पड़ा।

''यति'' का अर्थ है स्वल्प विराम है। यति र्जिहोष्टि विष्यान्ति अर्थात जहां छन्द में इस्ट स्थान में जिव्हा को विश्राम लेना चाहिए उसे यति कहते है। नमस्तस्म महादेवः यः शाशकार्द्ध धारणे इस अनुष्टुप में यतिभंग दोष स्पष्ट है। अनुष्टुय छन्द के प्रत्येक चरण में आठ अक्षर होते है और हर एक चरण में यति था विराम होना ही चाहिए इस छन्द में महादेवाय काय प्रथमचरण में न समाकर दूसरे चरण में पठित होता है जो पति भंग का कारण बनता है।

वेदांग छन्दूस का अन्य वेदांगों के साथ वैभिन्य

वेद के छः अंगों में व्याकारण निरक्त शिक्षा आदि का भाषा के साथ व्यापक सम्बन्ध पाया जाता है। चाहे वह गद्य हो या पद्य किन्तु छन्दस की दूसरी प्रकृति है इसका उपयोग मात्र भाषा के पद्य के क्षेत्र में पायी जाती है चाहें वह पद्य छन्द वर्णित हो या मात्रिक यहां तक की स्वरविहीन व्यंजन की छन्दस में कोई उपयोगिता नहीं होती यद्यपि कहा गया है कि व्यंजन चार्ध मात्रक अर्थात व्यंजन की आर्धा मात्रा होती है किन्तु छन्दःशास्त्र में उसकी कोई उपयोगिता नहीं है।

अग्नि पुराण

छन्दों के लक्षण तथा स्वरूप के परिचय मे अग्नि पुराण की भी उपयोगिता है किन्तु अग्निपुराण की प्राचीनतः तथा प्रमाणिकता संदिग्ध है अधिकांश विद्वानों का मानना है कि अग्नि पुराण एक मौलिक ग्रन्थ न होकर संकलित ग्रन्थ है यही कारण है कि छन्दःशास्त्र के आदि प्रणेताओं में सर्वप्रथम नाम पिग्ङ्लाचार्य का लिया जाता है क्योंकि उनके ग्रन्थ पिंग्ङ्ल सूत्र में सर्वप्रथम वैदिक एवं लौकिक छन्दों के लक्षण स्वरूप युक्ति युक्त निर्धारित किये गये है हो सकता है कि किसी विद्वान ने पिंग्ङ्लसूत्र को उपजीव्य बनाकर उस के आधार पर अग्निपुराण में छन्दो का संकलन किया हो किन्तु वह अपूर्ण है अग्नि पुराण के एक अध्याय में उन्ही छन्दों के लक्षण तथा नामों का उल्लेख है जो पिंग्ङ्लाचार्य के पिंग्ङ्ल सूत्र दृष्य है कहने का सारांश यह है कि छन्दों का उपजीव्य ग्रन्थ अग्निपुराण को मानना संदिग्ध है वास्तविकता तो यह है कि यद्यपि वैदिक संधिताओं ब्राह्मण ग्रन्थों एवं ऋकप्रातिसाख्य में यत्र तत्र छन्दों कि चर्चा की गयी है किन्तु वास्तव में छन्दःशास्त्र की उपजीव्य ग्रन्थ पिंग्ङ्ल सूत्र ही है। यद्यपि पिंग्ङ्लसूत्र में भी पूर्ववर्ती सैकट आदि आचार्यो के नाम मिलते है।

नाट्य शास्त्र

भरत मुनि का नाट्य शास्त्र अलंकार शास्त्र का प्रख्यात ग्रन्थ है जिसमे रस भाव अलंकार आदि

श्रव्य एवं दृश्य काव्यों के विवेच्य अंगो को प्रस्तुत किया गया है यद्यपि मूलतः वह नाट्य शास्त्र का ग्रन्थ है किन्तु आगे चलकर नाट्यशास्त्रीय विषयों का विस्तार श्रव्य काव्य तक पहुँचा इस लिये नाट्यशास्त्र काव्यशास्त्र के अनुशीलन परिशीलन में बहुत ही उपयोगी है क्योंकि रूपक या काव्य में छन्दों की भी प्रासंगिकता होती है इसलिये इस ग्रन्थ में भी छन्दों के स्वरूप लक्षणों की चर्चा है पर प्रमुखतः वह छन्दःशास्त्र का ग्रन्थन नहीं है इस ग्रन्थ में पूर्ण रूपेण छन्दों का विवेचन नहीं है

पिंग्ङल सूत्र

पिंग्ङलसूत्र के विषय में इस अध्याय में काफी प्रकाश डाला गया है इसलिये इसके फेर में चर्चा पिष्ट प्रेषक मात्र होगी अतएव उसके विषय में अधिक नहीं लिखा जा रहा यह ज्ञातव्य है की पिंग्ङल सूत्र ही आगे के छन्दःशास्त्र के प्रणेताओं का उपजीव्य ग्रन्थ है न केवल संस्कृत छन्दः शास्त्रकर्ता ओं का वह मार्गदर्शक है प्रत्युत प्राकृत पाली अपभ्रंश आदि में भी उसी का अनुकरण किया है प्राकृत पैग्ङलमय इसका उदाहरण है।

वृत्तरत्नाकर

पिंग्ङल सूत्र के पश्चात छन्दः शास्त्र के ग्रन्थों में भट्टकेदार के वृत्तरत्नाकर सर्वश्रेष्ठ स्थान है जिस पर भट्टनारायण की अति महत्वपूर्ण टीका है मूलग्रन्थ और टीकाग्रन्थ दोनों मिलकर छन्दःशास्त्र के प्रत्येक अंग उपांगो का बहुत ही गम्भीरता के साथ इसमें विवेचन किया गया है इस ग्रन्थ में छ अध याय है जिनमें छन्दःशास्त्रीय समस्त विषयों का अनुशीलन परिशीलन किया गया है।

वृत्तरत्नाकर की विशेषता इसलिये बढ़ जाती है इसमें लक्ष्य और लक्षण की जानकारी के लेये बहुत बड़ी सुविधा है लेखक ने जिस छन्द का लक्षण निरूपित किया है उसका उदाहरण भी वही है क्योंकि उसी छन्द में लक्षण निरूपित है जो स्वमृ लक्ष्य या उदाहरण की पूर्ति भी करता है।

इस ग्रन्थ की अपर विशेषता यह है कि इसमें छन्दों विषयक अध्यायवर्धा निरूपित सम्पूर्ण छन्दः

की शास्त्रीय परिज्ञान को एक जगह ही संकलित कर लिया गया है जो कुछ कमी टीका कार्य की दृष्टि में आयी उसकी सम्पूर्ति छन्दःशास्त्र मर्मज्ञ भट्टनारायण ने कर दी है।

यद्यपि वृत्तरत्नाकर मुख्यतः लौकिक संस्कृत के छन्दो को ही अविकल्प रूप में समुपवर्णित करने का संकल्प लिया था किन्तु भट्टनरायण की नरायण भट्टीया टीका के प्रभाव से इसमें वैदिक एवं प्राकृत छन्दो का भी यथेष्ट निरूपण कर दिया गया है जिससे इस ग्रन्थ की उपादेयता एवं प्रासंगिकता अधिक बढ़ जाती है जिससे इस ग्रन्थ की उपादेयता एवं प्रासंगिकता अधिक बढ़ जाती है क्योंकि वैदिक छन्दों का विकास लौकिक संस्कृत में होते हुए प्राकृत अपभ्रंश तक कैसे हुआ वृत्तरत्नाकर इस जानकारी हेतु सर्वोत्तम ग्रन्थ है आगे चलकर हिन्दी भाषा में चौपाई दोहा रोला कुण्डलिका आदि छन्द का विकास क्रम की जानकारी हेतु वृत्तरत्नाकर अपूर्ण ग्रन्थ है।

छन्दोमंजरी

छन्दोमंजरी के निर्माता श्री गंगादास है इन्होने वृत्तरत्नाकर के अनुकरण पर छन्दोमंजरी का निर्माण किया है वृत्तरत्नाकर के द्वारा यह छन्दो ग्रन्थ गतार्थ हो जाता है क्योंकि इसमें वृत्तरत्नाकर की अपेक्षा कोई ग्रन्थकरीय मौलिकता नहीं दिखती यह ग्रन्थ भी छः प्रकरणों में विभक्त है प्रत्येक प्रकरण को श्री गंगादास ने स्तनक कहा है जो उचित ही है इन्होने अपने ग्रन्थ का नाम छन्दोमंजरी रखा है इसलिये मंजरी में स्तवक होने ही चाहिये छन्दोमंजरी और वृत्तरत्नाकर के नाम से ही उन दोनो की विशेषताये परिलक्षित हो जाती है यदि गंगादास का ग्रन्थ छन्दो की एक मंजरी है तो भट्ट केदार का ग्रन्थ छन्दों का रत्नाकर (समुद्र) है यह बात अवश्य है की सरलता की दृष्टि से रत्नाकर की अपेक्षा मंजरी जिज्ञासुओं के लिये अधिक आकर्षक है किन्तु छन्दःशास्त्र के सांगोपाँग परिज्ञान के लिये वृत्तरत्नाकर अनुपम ग्रन्थ है।

श्रुत बोध

श्रुत बोध नामक छन्दोग्रन्थ कालिदास के द्वारा निर्मित हुआ है किन्तु यह विवादास्पद है कि यह छन्दोग्रन्थ विश्व विश्रुत महाकवि कालिदास जिन्होने शकुन्तल रघुवंश आदि श्रव्य दृश्य काव्यों की रचना के द्वारा विश्व विख्यात हुए है उन्ही की यह रचना है या किसी दूसरे कालिदास की कुछ भी हो संस्कृत के प्रमुख छन्दों के परिज्ञान में श्रुतबोध का विशिष्ट स्थान है

श्रुत बोध पिंग्ङल सूत्र वृत्तरत्नाकर, छन्दोमंजरी आदि की शैली से हटकर एक नयी विधा प्रस्तुत करता है श्रुत बोध में जिस छन्द का निरूपण किया गया है उसमें वर्णो की गणना आधार बनाया गया है एवं यति आदि का भी निर्देशन कर दिया गया है एवं जिस छन्द का लक्षण निरूपित किया जा रहा है। उसका निरूपण उसी छन्द में किया गया है इस ग्रन्थ में मात्र ४३ छन्द है जिनमें लौकिक संस्कृत काव्यों में प्रचुरता से प्रयुक्त होने वाले छन्दों का निरूपण है यह बात अवश्य है की इस ग्रन्थ में अश्लीलांश की भरमार है जो कोमल मति छात्रो के लिये हानिकर है लगता तो ऐसा है, की लेखक ने अपनी पत्नी का प्रेयसी के लिये छन्दः परिज्ञान हेतु इसका निर्माण किया है, क्योंकि हर एक छन्द में ऐसे ही सम्बोधन पाये जाते है आगे चलकर छन्दःकौमुदी के नाम से इसी को परिमार्जित कर नरायण शास्त्री खिस्ते में इसका नया रूप प्रदान किया है जो अधिक ग्राह्य बन गया है।

सुवृत्ततिलक

कश्मीरी महाकवि क्षेमेन्द्र विरचित सुवृत्ततिलक आकार में लघुकाय किन्तु छन्दो विषयक ज्ञान में विशाल ग्रन्थ है छन्दःशास्त्र की परिपाटी में इस ग्रन्थ की एक नयी ही दिशा है। जो अति महत्वपूर्ण है। महाकवि क्षेमेन्द्र सर्व तन्त्र स्वतंत्र महाकवि क्षेमेन्द्र की प्रतिभा बहुमुखी थी वे उच्चकोटि के कवि तो थे ही साथ ही अनेक शास्त्र निर्ष्णात भी थे उनकी कृतियों में उनका पाड़ित्य पदे-पदे झलकता है। सुवृत्त तिलक में भी उनके कवित्व छन्दः शास्त्र प्राकृति की मर्मज्ञता इस ग्रन्थ में परिख्याप्त है।

शुक्ल तिलक में तीन विन्यास है प्रथम विन्यास का नाम वृत्तावचयी है इसमें महाकवि क्षेमेन्द्र

ने छन्दोषियक सामग्री की प्रस्तुति तथा संस्कृत लगत में सुप्रसिद्ध छन्दो का लक्षण र्निदिष्ट किया है महाकवि क्षेमेन्द्र अपने सुव्रत्ततिलक में छन्दो निरूपण में अनुष्टुप का सहारा लेते हैं और लक्षणों का निरूपण करने के पश्चात अनेक काव्यो से गृहीत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

द्वितीय विन्यास को लेखक ने गुणदोष दर्शन के नाम से अभिहित किया है कोई भी छन्द कैसे बहुमूल्य हो जाता है अर्थात उसमें गुणवत्ता बढ़ जाती है तथा किस प्रक्रिया से किसी छन्द को संक्षेप माना जाता है इसकी विवेचना इस विन्यास में की गयी है

लेखक ने तृतीय विन्यास में छन्दो के विषय में एक सर्वथा मौलिक विचार प्रस्तुत किया है इसी विन्यास से पता चलता है कि महामति क्षेमेन्द्र का ज्ञान कितना विस्तृत तथा विशाल था। सचमुच ही क्षेमेन्द्र नम्रता के कारण अपने को व्यास दास कहते थे किन्तु काव्य जगत में कविवर क्षेमेन्द्र को अभिनव व्यास कहना अनुपयुक्त न होगा क्षेमेन्द्र ने शास्त्र पुराण रामायण महाभारत एवम विविध महाकाव्यों का अनुशीलन परिशीलन करके आगे के कवियों के लिए महत्वपूर्ण मार्ग दर्शन किया है किस विषय का वर्णन किस छन्द में करना चाहिए इतना ही नहीं लेखक ने यह भी सोदाहरण लिखा है की महान से महान कवि को किसी एक ही छन्द में विशिष्टता प्राप्त होती है फिर भी सभी कवि आवश्यक विविध छन्दों का आश्रय लेते है कविवर क्षेमेन्द्र ने इस सन्दर्भ में महाकवि कालीदास के मन्दाक्रान्ता छन्द भवभूति के शिखरणी छन्द भारवि के वंशस्थ एवम् राजशेखर के शार्दूलविकृणित छन्द की भूरीभूरी प्रशंसा की है निश्चय ही सुवृत्ततिलक छन्दो जगत में सुप्रत्त तिलक छन्दों जगत में सुव्रत्तो का तिलक है।

वाणीभूषण तथा छन्दों विरचिति तथा अन्य छन्दः ग्रन्थ

छन्दः शास्त्र की परम्परा में वाणी भूषण छन्दो विरचिति, वाग्वल्लभ आदि अनेक ग्रन्थ उपलब्ध है। किन्तु छन्दों ज्ञान की दिशा में उनकी कोई नयी देन नहीं है। ज्यातिष के प्राकाण्ड विद्वान वराहमिहिर की गृहत संहिता में भी एक अध्याय छन्दोविषयक है। किन्तु वह भी संस्कृत के विशिष्ट छन्दो

का संकलन मात्र है श्री हेमचन्द्र ने अपने छन्दोऽनुशासन में संस्कृत तथा प्राकृत छन्दों का निरूपण किया है। शोध ग्रन्थ के विस्तार भय से उनका पल्लवन नहीं किया जा रहा है। केवल इतना ज्ञातव्य है की छन्दः शास्त्र के विकासात्मक अध्ययन में इस सबका योगदान महत्वपूर्ण है।

ख- छन्दः शास्त्रीय प्रस्तार विमर्श तथा उनकी उपयोगिता -

छन्दः शास्त्र में प्रस्तर के सम्बन्ध में पिंगल सूत्र एवं वृत्तरत्नाकर में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है उन दोनों में भी वृत्त रत्नाकर प्रस्तर परिज्ञान के लिए श्रेष्ठ है न केवल प्रस्तार प्रत्युत नष्ट और उदिष्ट को भी भट्ट केदार ने अपने ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में निरुपित किया है छन्दों के वैज्ञानिक स्वरूप की पहचान के लिए तथा नये-नये छन्दों के निर्माण हेतु प्रस्तार का परिज्ञान अत्यन्त ही सहायक है प्रस्तार निरुपक से ये भी निष्कर्ष निकलता है की छन्दः शास्त्र में यद्यपि कलाओं की संख्या चतुष्टी बतायी गयी है जबकि वह अपरिमेय है इसी भांति संगीत में छः राग एवं छत्तीस रागिनियों को शास्त्रीय रूप मिला है किन्तु संगीत परिधि से बहुत विस्तृत है इसी भांति की संख्या का भी परिसीमन नहीं किया जा सकता क्योंकि छन्दःकार के ह्रदय में उद्भूत स्वरलहरी को सीमित नहीं किया जा सकता यही कारण है की श्रुतियों से लेकर आधुनिक भाषाओं तक छन्दों का क्रमिक विकास हुआ है और भविष्य में भी इसका प्रवाह अक्षुण्य रहेगा शोध ग्रन्थ के छठे अध्याय में इसकी यथेष्ट चर्चा की जायेगी।

ग- त्रिविध छन्दों के स्वरूप का विवेचन -

इसी अध्याय में ही ऊपर यथावसर त्रिविध छन्दों का विवेचन किया जा चुका है उसकी फिर से चर्चा अनुपयुक्त है क्योंकि वह पिष्टप्रेषण मात्र होगी।

उद्घत तालिका

1. डा0 कृष्णकुमार – संस्कृत साहित्य का इतिहास पृष्ठ 138

2. मैथलीशरण गुप्त – भारत भारती (वर्तमान खण्ड)

चतुर्थ अध्याय

चतुर्थ अध्याय

लौकिक संस्कृत छन्दों का आकलन

ऊपर वेद में आये हुए प्रमुख छन्दों की चर्चा हो चुकी है अब यहां पर लौकिक संस्कृत तथा परिवर्ती भाषाओं के छन्दों का संक्षिप्त विवेचन किया जा रहा है वृत्तरत्नाकर में एकाक्षर छन्द से लेकर छब्बीस वर्णो तक के गुरुकाय वृत्तों का उल्लेख किया गया है जो रामायण, महाभारत, अष्टादश पुराण दृश्य श्रृव्य काव्यों में प्रयुक्त हुए है इसी भांति मांत्रिक छन्दों का भी भट्ट केदार ने निरुपण किया है जो संस्कृत जगत में यत्र-तत्र प्रयुक्त हुए है यद्यपि व्रत्त पर जाति छन्द शताधिक है फिर भी उनमें कुछ छन्द बहुत ही लोकप्रिय हुए सुब्रत्ततिलक, श्रुतबोध में इन्हीं छन्दों को लक्षित किया गया है क्योंकि जो अधिकांश उपयोग में आने वाले है और संस्कृत साहित्य में सर्वत्र फैले हुए है उन्हीं का निरुपण उचित समझा गया है, हम यहाँ स्पष्ट कर देना चाहते है की इसी शोध ग्रन्थ में छन्दों के विकास की जानकारी ही मुख्य उद्देश्य है एवं छन्दों की इससे प्रासंगिकता पुष्टि करना है क्योंकि वेदांग का यह अंग उपेक्षित रहा है जबकि वैदिक एवं लौकिक संस्कृत साहित्य का यही मूलाधार है कहने का तात्पर्य यह है कि हमारा लक्ष्य छन्दों का ऑकड़ा प्रस्तुत करना नहीं मात्र इसका लक्ष्य छन्दों के विकास की जानकारी है और उसका जनजीवन एवम् सहृदय समाज में उपादेयता है।

(क) बाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त छन्द -

स्वनाम धन्य महर्षि ऋषि वाल्मीकि का रामायण आदि काव्य कहा जाता है यद्यपि भगवान कृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में अपनी विभूतियों का वर्णन करते हुए कहा है कि कविनामूश्ना कविः अर्थात भगवान कहते हैं कि मैं कवियों में उश्नसूत्र (शुक्र) हूँ किन्तु लौकिक संस्कृत के छन्दों के आदि उद्गाता महर्षि वाल्मीकि ही है उनकी रामायण नामक कृति की रचना अनुष्टुप छन्दों में की गयी है शायद रामायण, महाभारत, पुराण जैसे समस्त ग्रन्थों में अनुष्टुप की प्रधानता देखकर ही आचार्य

क्षमेन्द्र ने सुव्रत्ततिलक में वंश वर्णन आदि में अनुष्टुप का प्रयोग करना चाहिए ऐसी संस्तुति की है यद्यपि रामायण में अनुष्टुप छन्द निनन्यावे प्रतिशत प्रयुक्त है फिर भी उपजाति वंशस्थ वंसन्तलिका आंदि छन्द का प्रयोग भी यथा स्थान मिलता है।

(ख) महाभारत में प्रयुक्त छन्दों का आकलन -

भगवान व्यास निर्मित महाभारत में भी अनुष्टुय छन्दों का ही बाहुल्य है यदि यह कहा जाये कि श्री व्यास ने महाभारत की रचना अनुष्टुप छन्दों में की है तो अनुपयुक्त न होगा फिर भी श्री व्यास ने यथा अक्सर प्रसिद्ध कुछ अन्य छन्द भी अपनाये है जिनमें उपजाति, वंशस्थ वक्षन्तलिका, मालिनी सार्दुल विकृणित प्रमुख है निश्चय ही छन्दों के विकास क्रम में रामायण से कुछ आगे है।

(ग) पुराणों में गुम्फित छन्दों का आकलन -

अष्टदशः पुराण भगवान व्यास की ही रचना मानी जाती है जैसा कि ऊपर कह आये है कि श्री व्यास ने अपनी कृतियों में अनुष्टुप को ही आधार बनाया है जो ठीक ही है सुदीर्घ कथानक ऐतिहासिक व्रत्तों का निरुपण आदि अनुष्टुप के माध्यम से किया जा सकता है। फिर भी रामायण महाभारत की अपेक्षा पुराणों में विकास की दृष्टि से अपेक्षाकृत अधिक छन्दो का प्रयोग किया गया है उपजाति वंशस्थ वसन्ततिलका मालनी शिखरणी सार्दुल विकृणित सृग्धरा आदि छन्द पुराणों में यत्र-तत्र द्रिष्ट होते है।

अधिकांश पुराणों की यही स्थिति है किन्तु श्रीमद्भागवत पुराण में नये-नये छन्दों का प्राचुर्य देखा जा सकता है उसके आरम्भिक अध्यांय में ही शार्दुलविकृीणित[1] द्रुतविलम्बबित[2] जैसे छन्दों का प्रयोग किया गया है, यद्यपि संख्या की दृष्टि से भागवत में भी अनुष्टुप छन्दों की प्रधानता है फिर भी रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों की अपेक्षा भागवत में अपेक्षा कृत नये-नये छन्दों का प्रयोग किया गया है।

यह भी ज्ञातव्य है कि रामायण महाभारत शेष अन्य पुराण में प्रयुक्त संस्कृत भाषा में और भागवत की संस्कृत में भी बहुत अन्तर है भागवत में भाषाा का काठिन्य अपनी पहचान बनातां है इसी विभिन्नता की पुष्टि नये-नये छन्दों का प्रयोग भी करता है।

(घ) श्रव्य, दृष्य एवं चम्पू काव्यों में छन्दों का प्रयोग -

छन्दों के विकास की श्रंखला में श्रव्य द्रष्य एवं चंम्पू काव्यों में प्रयुक्त छन्दों का विवेचन प्राप्त है महाकवि कालिदास भारवि० माघ, श्री हर्ष भाष, भवभूति आदि की कृतियों के अध्ययन से यह बात पुष्टि हो जाती है की छन्दों का विकास किस भांति शैनः-शैनः एक लघु श्रोत स्वनी से परिवर्धित महानदी की तरह उत्तरोन्तर बढ़ता गया है संस्कृत काव्यों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य का आरम्भ यद्यपि अनुष्टुप छन्द से किया है और महाकाव्य के कई सर्ग अनुष्टुप मे ही लिखे गये है किन्तु रामायण महाभारत एवं पुराणों की भांति कालिदास की कृतियों में अनुष्टुप की प्रधानता नहीं है रघुवंश के कई सर्ग उपजाति, वंशस्थ, दुर्त विलम्बबित आदि में भी लिखे गये है वसन्ततिलका एवं मालवी का भी प्रयोग उन्होंने यथास्थान किया है। इतना ही नहीं कुछ सर्गो में नये छन्दों का भी आश्रय लिया है एक सर्ग में उन्होंने स्वागता छन्द को अपनाया है इसी भांति रघुवंश का एक सर्ग रथोद्धता में लिखा है-

उनका दूसरा महाकाव्य कुमार सम्भव है उसका आरम्भ कवि ने उपजाति से किया है अष्टसर्गात्मक इस कृति में भी विविध छन्दों का उपयोग है। कवि की तीसरी प्रसिद्ध रचना मेघदूतम्, मन्दाक्रांता में लिखित है -

अपने नाटकों में उन्होंने यथावसर संस्कृत के विविध छन्दों का उपयोग किया है शाकुन्तल में श्रृगधरा, आर्या, वसन्ततिलका, मलिनी उपजाति, वंशस्थ, सार्दूलविकृणित तथा शिखरणी आदि छन्द प्रयुक्त हुए है।

कालिदास के रघुवंश कुमार सम्भव एवं मेघदूत को संस्कृत काव्य जगत में लघुत्रयी की संज्ञा

मिली है। विहतत्रयी में भारवी किर्ताजुनीय महाकाव्य माघ का शिशुपाल वध एवं श्री हर्ष का नैषधीयचरितम् आते है छन्दों का विकास क्रम में भारवी, माघ तथा श्री हर्ष कालिदास से बहुंत आगे है कहना नहीं होगा कि संस्कृत काव्य जगत को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है एक मार्ग के उपसीध्य कालिदास है तो दूसरे के महाकवि भारवी।

महाकवि कालिदास वाल्मीकि व्यास की परम्परा के कवि है उनकी रचनाओं में वर्णय विषय की प्रधानता है इसलिए उनकी कृतियों में कथानक का वैविध है किन्तु भारवी की शैली सर्वथा नवीन है इनकी भाषा में कालिदास की अपेक्षा प्रसाद गुण की अल्पता है, इसके विपरीत उनकी भाषा जटिल तथा दुरूह है इनकी रचनाओं में कथानक की अल्पता और वर्णानात्मकता का आधिक्य है यही कारण है कि भारवी के महाकाव्य में कालिदास की अपेक्षा कई नये छन्दों को अपनाया गया है, यही स्थिति शिशुपाल वध और नैषध की है भारवी माघ और श्री हर्ष ने छन्दों के विकास क्रम को विशिष्ट गति दी है जहाँ कालिदास ने अपनी कृतियों में वियोगिनी हरिणी प्रहर्षणी, मालिनी आदि का प्रयोग अत्यल्प मात्रा में किया है वहीं भारवी माघ श्री हर्ष ने वियोगिनी हरणी प्रहर्षणी आदि में कई सर्ग लिखे है कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृत काव्य जगत में नये-नये छन्दों का प्रयोग होता है।

चंम्पू काव्य जिसमें गद्य एवं पद्य का संमिश्रण रहता है कहा ही गया है गद्य पद्य मयं काव्यं चंम्पू रिहयाभिधीयते इसी तरह भाषा आदि नाटककारों ने अपने नाटकों में यथा स्थान छन्दों का प्रयोग किया है कुल मिलाकर सारांश यह निकलता है कि रूपक और चंम्पू काव्य भी छन्दों के विकास की एक कड़ी है।

(ङ) पालि, प्राकृत अपभ्रंश में ग्रहीत छन्दों का निरुपण-

संस्कृत की परम्परा में भाषा का एक विकास क्रम रहा है जिस भांति ऋगवेद की भाषा यजुर्वेद, सामवेद, अर्थवेद में विकसित होती, ब्राह्मण उपनिषद तक आते-आते अपने रुप को पर्याप्त परिवर्तित कर लेती है आगे चलकर वैदिक भाषा ही लौकिक संस्कृति का रुप धारण कर लेती है लौकिक संस्कृत

मे भी भाषा की दृष्टि से वाल्मीकि व्यास भास कालिदास, भवभूति भारवी माघ श्री हर्ष तक आते-आते काफी परिवर्तन हो जाता है फिर भी उसे संस्कृत के नाम से ही जाना जाता है।

भाषा के विकास का दूसरा क्रम यह है कि किसी भाषा का एक साहित्य रुप होता है दूसरा बोलचाल का साहित्यक रुप रचना में परिष्कृत भाषा प्रयुक्त होती है और वह व्याकरण के नियमों से नियंत्रित होती है बोलचाल की भाषा का प्रवाह सरिता के स्वच्छन्द प्रवाह की तरह होता है वह व्याकरण आदि के नियमों से नियंत्रित नहीं होती, किन्तु जब बोल-चाल की भाषा का प्रवाह सरिता के स्वछन्द प्रवाह की तरह होता है वह व्याकरण आदि के नियमों से नियंत्रित नहीं होती किन्तु जब बोलचाल की भाषा में भी साहित्य रचना होने लग जाती है तो वह अपना कलेवर बदलकर आगे बढ़ जाती है भाषा के इसी विकास क्रम में प्राकृत पालि, अपभ्रंश प्रान्तीय एवं आधुनिक प्रान्तीय भाषाए तथा हिन्दी आती है।

पिंगल सूत्र के आधार पर प्राकृत पैंगलम् की १४वीं शती में रचना हुई जिसमें पालि प्राकृत अपभ्रंश भाषाओं में लिखित नये-नये छन्दो के नाम रुप एवं लक्षण की निरुपण किया गया है यद्यपि संस्कृत छन्दः शास्त्र की परम्परा में इन छन्दों का निर्माण हुआ किन्तु छन्दः शास्त्रीय सभी नियम कानून एवं छन्दों में लागू नहीं होते उदाहरणार्थ संस्कृत छन्दः शास्त्र के अनुसार ए, ओ, ऐ, औ जैसे स्वर सदैव गुरु माने जाते है ये द्विमात्रिक होते है संस्कृत की आर्या गति उपगीति आदि में इन स्वरों का उपयोग द्विमात्रिक ही होता है। किन्तु प्राकृत, पालि एवं अपभ्रंश में यह यथावसर लघु भी मान लिए जाते हैं।

प्राकृत के छन्दों का आरम्भ कालिदास के विक्रमावंशीयम् से ही आरम्भ हो जाता है। उर्वशी के विरह से व्याकुल पुरुखा जो प्रलाप करता है उसकी भाषा प्राकृत है और उसमें प्राकृत छन्दों का संकेत है प्राकृत पालि और अपभ्रंश के प्रचार-प्रसार के साथ उन-उन भाषाओं में निर्मित छन्दों का भी प्रचार प्रसार होने लगा दूहा पस्सझटिका सटपटी त्रिपदी चतुष्पादिका जैसे छन्द लिखे जाने लगे ।

इन छन्दों की लय प्रवाह आदि सर्वथा उन-उन भाषाओं के अनुरूप है जिससे यह पुष्टि होती है कि भाषा और छन्द रचनाकार के हृदय के ही उत्पादक है।

(च) शास्त्रीय छन्दों के विकास क्रम में आधुनिक काल में प्रयुक्त नवीन छन्दों की चर्चा -

ऋगवेद से आरम्भ कर वाल्मीकि व्यास कालिदास से सुकृत एवं भारवी माघ भवभूति श्री हर्ष आदि को अपने में समेटती हुयी छन्दः शास्त्र परम्परा लय की दृष्टि से एक रूप होकर भी अनेक रुपा होती चली गयी परिणामतः आज के संस्कृत कवियों में मूलतः वह परम्परा चली आ रही है किन्तु उसके रुप लक्षण में पर्याप्त विभिन्नता आ गयी है यद्यपि आधुनिक संस्कृत के महाकवि श्री रेवा प्रसाद द्विवेदी, अभिराज, राजेन्द्र मिश्र, सुधाकर द्विवेदी की कृतियों में पुराने शास्त्रीय छन्दों का सहारा लिया गया है किन्तु उनकी संस्कृत की ध्वनि लहरी सर्वथा नवीन है काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त उन्होंने नये-नये छन्दों का सर्जन किया है दूसरी भाषाओं की गीतियों को भी उन्होंने संस्कृत भाषा में परिष्कृत करके गीत रचना किया श्री जानकी वल्लभ शास्त्री प्रभात[३]श्री निवासरथ के संस्कृत गीत नये-नये छन्दों को अपने अनुरुप प्रस्तुत किये है प्रभात शास्त्री[३] की यह पंक्ति देखिए भ्रमर विहर रे मन्दं मन्दम् पायं पायं मधु मकरन्दम् निश्चय ही इन छन्दों का उपजीव्य जयदेव की गीति गोविन्द है को शास्त्रीय राग रागनियों में निबद्ध है।

उसकी एक पंक्ति देखिए ललित लवमं[४] लता परिशीलन कोमल मलय समीरे कहने का तात्पर्य यह है कि जयदेव कवि के छन्दों गीत शास्त्रीय संगीत पर लिखे गये है किन्तु आधुनिक संस्कृत कवियों के गीतों में जो छन्दों रचना की जा रही है उसे सुगम संगीत कहा जा सकता है, निश्चय ही संस्कृत छन्दों की यह विकास धारा सुरभारती को अमरता प्रदान करती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऋग्वेद उपनिषदो तक एवम रामायण पुराणो तक एवमेव कालीदास से लेकर पण्डित राजजगतनाथ तक छन्दों कि परम्परा नये-नये रूप धारण करती रही है आधुनिक युग में गीत गोविन्द की उपजीव्य बनाकर गीतगिरीश में राम गीत गोबिन्द आदि पर्याप्त राम काव्यो में नये-नये छन्दों का प्रयोग संस्कृत कवियों द्वारा किया गया है जिनकी एक अपनी प्रथक परम्परा है राग काव्यो के छन्द का अनुशीलन परिशीलन शोध का एक स्वतन्त्र विषय है कहना नहीं होगा कि इस क्षेत्र में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री स्वनाम धन्य डा० प्रभात शास्त्री का कार्य बहुत ही महत्वपूर्ण

है उन्होने जाने कितने ही अमुद्रित उपेक्षित राम काव्यों का मुद्रण प्रकाशन करके उनका उद्धार किया है गीत रघुनन्दन को डी० लिट् कि महत्वपूर्ण उपाधि प्राप्त की है यद्यपि संस्कृत गद्य साहित्य में अभिनव वाण के नाम से विख्यात पण्डित अम्बिका दत्त व्यास ने संस्कृत गद्य के क्षेत्र में ही अपनी यश पताका फैलाया हैं। फिर भी उनके शिवराज विजय नामक संस्कृत गद्य काव्य में कुछ संस्कृत गीत उल्लेखनीय है कुछ पंक्तिया निम्नांकित दर्शनीय है ।

सखि हे नन्द तनय आगच्छति

मंद मंद मुरली नणनयीः समधिक सुख्यं प्रयच्छति

इसी परम्परा में आधुनिक संस्कृत कवि नये -नये छन्दों का सर्जन कर रहे है जिनमें श्री जानकी वल्लभ शास्त्री,श्री प्रभात शास्त्री,श्री राजेन्द्र मिश्र, श्री श्रीनिवासआदि प्रमुख है। इस क्षेत्र में कुछ संस्कृत नुक्त वृत्तकारों कि चर्चा प्रासंगिक न होगीं

डा० विशनलाल शर्मा गौड कि 'अग्निला'इनमें प्रमुख है छन्दों कि नयी विधाओ में डा० प्रशस्य मित्र शास्त्री का नाम भी उल्लेखनीय है उन्होनें संस्कृत के एक उपेक्षित अंग ह्रास ब्यगों कि श्लागनीय सम्प्रति कि है और सम्प्रति भी कर रहे है जिनमें नये-नये छन्दों का विनियोग किया गया है।

उद्घत तालिका

1. जन्माद्यस्य यतोऽन्यादि दिर्तव्येत चार्थेष्वभि स्वमिज्ञः स्वराट्।

   ते ने ब्रम्ह हृदाय आदिकवयो मुह्यन्ति यत् सूरयः।।

   तेजो वारीमृदाम् यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा।

   धाम्ना खेन सदानिरस्थ कुहकं सत्यं परं धीमहि।

   भा0प्र0स्क0श्लो0सं0 1/1

2. निगम कल्प तेर्रोगलितंकलं,

   शुक मुखा दमृत द्रवसंयुतम्।

   पिबत भागवतं रस मालयं

   मुहुरहो रसिका भवि भावुकाः

   भा0—वही अ 1/3

3. प्रभात शास्त्र संगमनी पत्रिका वर्ष 8 सं0 11

4. जयदेव गीत गोविन्द गीत सं0 12

पंचम अध्याय

पंचम अध्याय

छन्दः शास्त्र की विनियोग पद्धति

(क) वेदों में वर्णथ विषय के आधार पर छन्दों के प्रयोग की मीमांसा

प्रस्तुत अध्याय में छन्दः शास्त्र की विनियोग पद्धति का दर्शन कराया जा रहा है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि चाहे वेद हो या लोक दोनों में जो रचनायें आज उपलब्ध है उनके अनुशीलन परिशीलन से यह बात स्पष्ट हो जाती है की चाहे वह वेदों के छन्द हो या लोक के क्रांतिदर्शी कवि इस सन्दर्भ में पूर्ण स्वतन्त्र होता है या स्वछन्द होता है वह अपनी रचना किसी छन्द के अनुरोध पर नहीं करता प्रस्तुत उसकी वाणी से जो स्वरलहरी उत्पन्न हो जाती है वही छन्द का रूप धारण कर लेती है कविवर सुमित्रानन्दन पन्त[१] इस ओर संकेत किया है -

वियोगी होगा पहला कवि

आह से उपजा होगा गान

हृदय के कोने से चुपचाप

वही होगी कविता अनजान

और भी धूली[२] की ढेरी पर अनजान।

पडे है मेरे मधुमय गान

सचमुच ही आदि कवि वाल्मीकि के हृदय में ऐसे ही तो एक वाणी का अवतरण हुआ था जो अनुष्टुप बनकर विश्व की प्रथम कविता का हेतु बना वह अनुष्टुप यह है :-

माँ निषाद प्रतिष्ठा त्वा/१

क्षमागमः शास्त्रती समः

यत् क्रयोंच मिथुना देक।

मवधीः काम मोहितम्।।

वैदिक छन्द तो अपोरुषेय माने जाते हैं ऋषियों के हृदय में जो स्वरलहरी भवोद् वेग से उद्गीर्ण हुई वही छन्दों का रुप धारण करती गयी स्पष्ट है की प्रारम्भकाल में लक्षण को देखकर लक्ष्य की रचना नहीं होती थी प्रत्युत लक्ष्य के अनुरोध से ही लक्षणों का निर्माण होता था और वही लक्षण भिन्न-भिन्न छन्दों का नाम रुप धारण करते गये।

कहने का तात्पर्य यह है कि वेदों में वर्णय विषय ही प्रमुख था किन्तु उसका प्रकार छन्द कहा जाने लगा एवं जो वर्णय विषय जिस ऋषि के हृदय में प्रथम उद्भूत हुआ वहीं उसका ऋषि माना गया सहस्त्रों वर्ष बीत गये किन्तु वेद की यह व्यवस्था स्वाध्याय या कर्मकाण्ड के विनियोग में जीवित है किसी भी मंत्र के उच्चारण या उपयोग के पूर्व मंत्र के ऋषि देवता एवं छन्द का विनियोग अवश्य होता है।

इस संदर्भ में वेदत्रयी में ऋग्वेद का सर्वाधिक महत्व हे जो ऋचायें आर्या के निर्मल अन्तःकरण से उद्भूति हुयं उन ऋचाओं के प्रथम दृष्टा या उद्गाता वही ऋषि प्रसिद्व हुये, किन्तु विश्व कि प्राकृतिक सुषमा से अभिभूत होकर ऋषि ने हर्षो उल्लास से जिसका स्तावन किया वही उस ऋचा का देवता माना गया यह बात हम इस शोध प्रबन्ध में कई बार दोहरा आये हे इस स्तावन काल में ऋषि के परावाणी मध्यमा और पश्यन्ति का रूप धारण कर मुख से जो उद्गलित हुई उसमें संगीतात्मकता या लयबदृता तो ली ही किन्तु वह अनेक रूना होकर अनेक निबद्व ध्वनियां में परिवर्तित होती हुयी तत्-तत् छन्दों का रूप धारण करती गयी यह भी एक आश्चर्य जनक रहस्य ही कहा जायेगा कि किन ज्योतिर्यमय दृश्यो के अन्तःकरण से उद्वेगेलित करने के लिए विभिन्न अन्तरनादो का सृजन होता गया जिनको पाश्चात श्रुति प्रेमियों ने भिन्न-भिन्न नामो से पुकारा जो छन्दस के नाम से प्राख्यात हुये कहना नहीं होगा कि आर्या कि आनन्दाभूति का ध्वनिरूपा में परिचायक इन छन्दों में उनकी आनन्दानुभूति इतनी एकात्म थी कि ऋषि,देवता और छन्दस ये तीनों बहिरि जगत में भले ही विधा विभक्त प्रतीत होते हो किन्तु मूलतः अर्न्तजगत में इन तीनों में सामजस्थ है।

यद्यपि आर्य सर्वथा स्वतन्त्र असंकीर्ण देशकाल निरपेक्ष होकर अकुतोभयच विचरणशील ब्यक्तित्व थे आर्य शब्द कि निष्पति ही ऋगतउ धातु से निष्पन्य होती है जिसका तात्यपर्य यह होता है

कि जिस तरह उनको कोई भी भौगोलिक परिवेश वाह्य रूप में नहीं बाँधा जा सकता था इसी भाँति उनकी अन्तरनुभूति भी इसी संकीर्ण भावना से प्रतिवद्व नहीं भी जैसा उनका निर्मल अन्तःकरण था जो पारदर्शी जान्हवीय तोय के समान निर्मलता उसमे से निगलित हर्षोद्रेक संवलित वाक भी सहज स्वच्छ तथा निर्मल होकर प्रस्फुटित होती थी किन्तु सरित प्रवाह कि तरह उभय फूलों से संस्पर्शित होकर सहज स्वच्छन्द छन्द का रूप धारण कर लेती थी इसीलिए विश्ववाऽमय सर्वथा अप्रतिम तथा अपूर्व है।

(ख)लौकिक संस्कृत में वर्णय विषय के अनुसार प्रयुक्त छन्दों की मीमांसा

इस सन्दर्भ में हमें सुवृत्ततिलक के अध्ययन के समय यह देख-चुके है की महाकवि क्षेमेन्द्र ने विषय के आधार पर छन्दों के प्रयोग की संस्तुति की है कविवर क्षमेन्द्र यह संस्तुति संस्कृत के अत्यन्त विस्तृत एवं विशाल वाड़मय के स्वाध्याय का परिणाम था उन्होंने अनुभव किया की कोई भी सिद्ध कवि अपने विषय के वर्णन के लिए जो छन्द अपनाता है उसके लिए कहीं अनुकूल था उसके विपरीत दूसरे छन्द को स्वीकार अस्वाभाविक होता क्षेमेन्द्र ने वियोग विलाप के वर्णन में वियोगिनी छन्द की संस्तुति की है कालिदास के रघुवंश में इन्दुमती के विरह में उसके विरही पति अज की यह उक्ति देखिये

सृगियं[3] यदि जीविता पहा

हदी निहिता खलु किन्नहन्तिमाम्

विष माप्या मृत क्वाचित भवेद

अमृत वा विष मीस्वेरेदया

कालिदास ने सन्देश काव्य के लिए अपने मेघदूत में मन्दाक्रान्ता छन्द का उपयोग किया है वह भी रहस्य पूर्ण है कोई भी विरही व्यक्ति शोभविष्ट हो अपने उद्गार कैसे प्रकट करता है यह छन्द इसका निर्देश न है।

वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य में चन्द्रोदय वर्णन में वसन्ततिलका छन्द का उपयोग किया है जब

को ई भी पाठक इस चन्द्रोदय वर्णन को पढ़ता है ततो उसे यह भूल ही जाता है कि वह चन्द्रोदय वर्णन पढ़ रहा कि सचमुच ही राका चन्द्रमा की श्वेत रसमियों में स्नात हो रहा है।

संस्कृत के कवियों ने आज गुण था वीर रस के वर्णन में सार्दूल विकृडित छन्द का अधिकांश प्रयोग किया है जो वर्णय विषय के सर्वथा अनुकूल है किसी की स्तुति में शिखरणी छन्द का उपयोग अधिकांशतः किया जाता सचमुच ही देवस्तुति में स्वर लहरी छन्द के साथ एक तान हो जाती है और वह अपने वर्णन विषय देवता के साथ तादात्मय स्थापित कर लेती है पुष्पदन्ताचार्य का महिमना स्तोत्र तथा पंडित राज जगन्नाथ की गंगा लहरी इस दिशा में विश्व विख्यात है।

ऊपर हमने मात्र अपने कथ्य को संकेत मात्र प्रस्तुत किया है क्षेमेन्द्र के सुव्रत्ततिलक में इसकी विस्तार की साथ चर्चा है इसलिये वही द्रष्टव्य है।

ग- संस्कृत के विशिष्ट कवियों के विशिष्ट छन्दों की मीमांसा -

संस्कृत कवियों के विशिष्ट छन्दों की मीमांसा के सन्दर्भ में यह निवेदनीय है की इस सम्वन्ध में भी महाकवि क्षेमेन्द्र का सुव्रत्ततिलक अत्यन्त उपकारक है चौथे अध्याय में इस सम्वन्ध में प्रकाश डाला गया है

सुव्रत्ततिलक के अन्तिम विन्यास में पहले तो यह चर्चा की गई है कि किस छन्द में किस विषय का वर्णन होना चाहिए फिर उसने लिखा है यद्यपि किसी कवि की सिद्व हस्तता किसी एक दो छन्द में होती है फिर भी कवि के लिये यह अपेक्षणीय है की उसे प्रत्येक छन्द की रचना में अधिकार प्राप्त हो अन्यथा कवि का कवित्य दारिद्र उदघाठित होता है

इसी विन्यास में महाकवि क्षेमेन्द्र ने जिन-जिन विशिष्ट संस्तुति कवियों की विशिष्ट छन्दों की प्रशंसा की है उसकी चर्चा संक्षेपताः यहाँ की जा रही है।

वे लिखते है की कवि विद्याधर का अनुष्टुप बहुत ही उत्क्रष्ट स्थान रखता है पाणिनी उपजाति छन्द में सिद्वहस्त है इसी भाँति महाकवि भारती का वंशस्थ बहुत ही चमत्कारक है रत्नाकर की

बसन्ततिलका और भवभूति की शिखरणी सिद्ध है महाकवि कालिदास अपनी मन्दाक्रान्ता में अति प्रशस्त है इसी क्रम में क्षेमेन्द्र बताते है की महाकवि राजशेखर शार्दूल विक्रीडित के लिए विख्यात है

इस तरह हम देखते है कि संस्कृत के प्रख्यात कवि भी किसी एक छन्द में अपनी विदग्धता रखते है क्षेमेन्द्र ने लिखा है कि किस छन्द में किस विषय का वर्णन होना चाहिये या अमुख कवि अमुखछन्द में ही निषूणति है इसको शास्त्रीय न समझा जाये फिर भी कहना नहीं होगा, इस संदर्भ में क्षेमेन्द्र का योगदान सराहनीय है

हमने इस अध्याय के आरम्भ में लिखा है कि कोई भी सिद्व कवि अपनी रचना किसी छन्द के अनुरोध से नहीं लिखता प्रत्युत उसकी रचना में वर्णन वर्ण विषय के अनुसार उपयुक्त छन्द प्रस्तुत हो जाते है किन्तु सुप्रत्ततिलक के आधार पर अन्त में यह दर्शाया गया है की अमुक विषय के लिए अमुक छन्द का प्रयोग करना चाहिए, लिखने का तात्यपर्य यह है कि दोनो में अर्न्तविरोध की भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए महाकवि क्षेमेन्द्र का निवेदन तो यथास्थिति का आकलन मात्र है वैसे कवि इस क्षेत्र में पूर्ण स्वतन्त्र है कहा भी गया है की निरकुशाःकवयः।

उद्घत तालिका

1. सुमित्रानन्द पंत पल्लविनी से उद्त।
2. वही।
3. कालीदास रघुवंश आ0भ0 श्लो0 सं0 22

षष्ठम् अध्याय

षष्ठ अध्यायः

संस्कृत छन्दों के विकास क्रम में परवर्ती छन्द

(क)- संस्कृत छन्दों एवम वदीतर छन्दों के उपजीव्य उपजीविक भाव की मीमांसा-

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में संस्कृत छन्दों के विषय में आवश्यक जानकारी यथाशक्ति दे दी गयी है संस्कृत के छन्दों के उद्भव एवम विकास का क्रम भी ऊपर स्थान -स्थान पर प्रस्तुत किया गया है। यथावसर संस्कृत छन्दों के स्वरूप लक्षण के निवेदन में प्राकृत अपभ्रंश आदि के छन्दों के शनैः-शनैः उद्भव एवम विकास की चर्चा भी संक्षिप्त रूप में की गयी है इतना ही नहीं लौकिक संस्कृत छन्दों की पृष्ठभूमि में वैदिक छन्दों का उद्भव विकास भी यथावसर निवेदित किया गया है प्रस्तुत अध्याय में संस्कृत छन्दों के साथ चाहे वह वैदिक संस्कृत के छन्द हो या लौकिक संस्कृत के उनके साथ प्राकृत अपभ्रंश आदि के छन्दों का क्या सम्बन्ध है यह भी प्रायः स्पष्ट कर दिया गया है यहाँ पर इस सम्बन्ध में फिर से चर्चा अस्पष्ट प्रतिपत्ति के लिए समझनी चाहिए।

यह निश्चित है कि जिस प्रकार भाषा के विकास क्रम में वैदिक संस्कृत,लौकिक संस्कृत, प्राकृत पालि अपभ्रंश का स्थान है वही विकास में समझना चाहिए सारांश यह है की संस्कृत के ही छन्द चाहे चह वैदिक हो या लौकिक प्राकृत पालि अपभ्रंस छन्दों के वही उनजीव्य है और पालि प्राकृत और अपभ्रंश आदि के छन्द उपजीविक है यह निर्विवाद है इसमें विस्तार से चर्चा आवश्यक है क्योंकि ज्ञातव्य विषय की जानकारी के पश्चात उसका पल्लवन पिष्ट पेषण मात्र सिद्व होगा।

फिर भी यह लक्ष्य करने कि बात है कि वैदिक छन्दों में सहज स्वच्छन्दता थी यद्यपि आजकल हम मुक्त वृत्त के संसार में किन्तु यह न समझना चाहिए कि हमारे वैदिक ऋषियों कि वाणी छन्दों के नियम उपनियमों में जकड़ी थी अन्य वैदिक छन्दों कि तो बात ही क्या गायत्री छन्द जो चारों वेदो में प्राप्त है वह अपने आप मे तीन चरणो वाला है इसीलिए गायत्री को त्रिपदा गायत्री कहा जाता है जबकि छन्दों के विकास क्रम के बावजूद भी परिवर्ती काल में लौकिक संस्कृत, पालि प्राकृत अपभ्रंश आदि में

किसी भी छन्द में चार चरण अनिवार्य माने जाने लगे चाहे वह वर्णिक छन्द हो गणच्छ छन्द हो अथवा मात्रिक छन्द होने के बावजूद भी उसकी चौपाइयों चमुष्पादिका के रूप में पहले से ही प्रचलित रही चौपाइयों शव्द का अर्थ ही यह होता है जिस चार पाद या चरण हो यथा

'जामवन्त के बचन सुहाए सुन हनुमान हृदय अति भाए।।

तब लग मोहि परसेहु मोहि भाई, सहि कन्दमूल फल खाई।।

इन चारो चरणों को मिलाकर चौपाई छन्द बनता है चौपाई के अर्द्धांश को अर्द्धाली कहते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि ऋग्वेद से लेकर आज तक वर्णित, जाति या मात्रिक सभी छन्दों में एक छन्दोंगत नियम उन-उन छन्दां को नियमित करता है।

(ख)- आधुनिक काल में प्रयुक्त वर्ण,गण,मात्रा,निरपेक्ष मुक्त छन्दों की अवतारणा का रहस्य एवम् उसकी उपादेयता अनुपादेयता की अवधारणा-

संस्कृत छन्दों का विकास वैदिक युग से लेकर आज तक जिस रूप में हुआ ओर उसकी अविरल धारा वैदिक युग से लेकर आज तक जिस रूप में हुआ और उसकी अविरल धारा सम्प्रति भी प्रवहमान है इसकी चर्चा हो चुकी है संस्कृत छन्दो के विकास क्रम में इसकी दूसरी धारा पाली प्राकृत अपभ्रंश हिन्दी तक पहुँचते-पहुँचते किस रूप में अपनी वर्धिष्णुता वनाये हुए है उसकी यत् किंचित् चर्चा यहाँ प्रसंग प्राप्त है, इसलिये की जा रही है सचमुच ही छन्दों विषयक अध्ययन की अन्तिम कडी यही है इसके बिना यह शोध प्रबन्ध अपूर्ण ही रह जाता हमारा विश्वास है की प्रस्तुत विषय की अवतारणा के पश्चात इसकी परिपूर्णता हो सकेगी।

संस्कृत के छन्द पालि प्राकृत प्रान्तीय भाषाओं में अपना नवीन नवीन रूप धारण करते हुए अनेक नाम रूप और लक्षणो से प्रसिद्व होते रहे है प्रान्तीय भाषाओं में अपना नवीन-नवीन रूप धारण करते हुए अनेक नाम रूप और लक्षणों से प्रसिद्ध होते रहे है प्रान्तीय भाषाओं में हिन्दी भाषा आज की राष्ट्रभाषा है देश के न केवल उत्तरापथ में यह बल्कि दक्षिणापथ में भी बोली एवं समझी जाती है

भारत की समस्त भाषाओं में यह मूर्धन्य है यह अतिश्योक्ति नहीं होगी यद्यपि छन्दो विकास की दृष्टि से हिन्दी का एक रूप ब्रजभाषा में सहस्त्रों कवियों ने विविध प्राचीन एवं नवीन छन्दो में रचनाये प्रस्तुत करते रहे किन्तु गद्य में हिन्दी के वर्तमान रूप की ही प्रमुखता रही है हिन्दी के सर्वस्व आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इस विषय को दूर किया।

भारतीय वाङ्यमय में यद्यपि गद्य एवम् पद्य आदि काल से प्रयुक्त रहे हैं। हम देखते है कि यदि वेदत्रयी में ऋग्वेद और सामवेद में पद्य का स्वीकृति है तो यर्जुवेद में गद्य कि वैदिक युगीन यह प्रवृत्ति उपनिषदों तक ज्यो कि त्यों चलीं आती है उपनिषद ग्रन्थ यदि सोभनगद्य एवम हृदयपद्य के निदर्शन है तो ब्राह्मण एवम् अरण्यक ग्रन्थ विशालकाय गद्य के यह सब कुछ होते हुए भी लौकिक संस्कृति के आते-आते गद्यकि अपेक्षापद्य को प्रमुखता मिली है रामायण,महाभारत,जैसे विशालकाय ग्रन्थ पद्य प्रधान ही है इनमें गद्य को आंशिक रूप में ही स्वीकार किया गया हैं वेदव्यास के अष्टादशपुराण जो अत्यन्त विस्तृत तथा विशाल है सब पद्यम है। लौकिक संस्कृत का ललित साहित्य नहीं ज्योतिष, गणित अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र आदि सर्वत्र पद्य कि प्रचुरता दृष्टिगोचरित है।

यद्यपि संस्कृत रचनाकार गद्य गरिमा[9] को स्वीकारते रहे यहाँ तक कि उनका एक सुभाषित है कि गद्य कवियों का निवन्ध अर्थात कसौटी है । फिर भी संस्कृत के क्षेत्र में वाण दण्डी सुवन्ध अम्विकादत्त व्यास जैसे इने गिने विद्वान ही गद्य रचनाकार पाये जाते है किन्तु सच तो यह है कि संस्कृत वाग्ङ्मय में पद्य का ही प्रधान्य है।

यह परम्परा हिन्दी साहित्य को उत्तराधिकार में प्राप्त हुई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता हे कि हिन्दी साहित्य अपभ्रंश से परिवर्तित होकर जो रूप धारण करके सामने आया उसमें गद्य कि अपेक्षा पद्य का ही प्रयोधान था हिन्दी साहित्य में पद्य प्रधान था उसमें ब्रज भाषा अवधी कि प्रमुखता रही प्रत्यु सत्य तो यह है हिन्दी साहित्य जो पद्य प्रधान था उसमें ब्रज भाषा को अनिवार्य रूप से स्वीकार कर लिया गया।

हिन्दी गद्य के चार आचार्यों द्वारा गद्य कि रूप रेखा प्रस्तुत कि गयी किन्तु उसका परिष्कृत रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा निश्चित हुआ हिन्दी गद्य में जिसको पहले खडी बोली कहा जाता था जो मेरठ के आस-पास कि भाषा थी उसका परिष्कार करके भारतेन्दु ने अपने-अपने बहुसंख्यक नाटकों के माध्यम से साजा सवारा परन्तु पद्य के क्षेत्र में ब्रज भाषा को ही पक्षधर रहे क्योंकि तत्कालीन खड़ी बोली में ब्रजभाषा के पक्षधर मधुरता एवं सरसता का अभाव देख रहे थे अन्ततः हिन्दी साहित्य के गद्य तथा पद्य दोनों रुपों के परिष्कार में आचार्य महाप्रसाद द्विवेदी का सबसे बड़ा श्रेय है। एक ओर आयोध्या सिंह उपाध्याय संस्कृत के छन्दों को हिन्दी में अतुकान्तरूप से प्रयुक्त कर हिन्दी छन्दों के भावी रुप रेखा को संकेतिक कर रहे थे तो दूसरी ओर आचार्य महाबीर प्रसाद द्विवेदी के निर्देशन में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, राजा गोपाल शरण सिंह, श्रीधर पाठक तथा रामनरेश त्रिपाठी आदि हिन्दी खड़ी बोली को सरसता तथा मधुरता तो प्रधान ही कर रहे थे साथ ही संस्कृत के छन्दों से आगे बढ़कर उनको अपने अनुरुप साज सवारकर नया रुप प्रदान कर रहे थे।

गद्य और पद्य में एक रूपता स्थापित हुयी हम यहाँ हिन्दी साहित्य का इतिहास नहीं प्रस्तुत कर रहे यह तो अपने प्रतिपादन विषय की पृष्ठ भूमि मात्र है तात्पर्य यह है कि इन पंक्तियों के लेखन से यह स्पष्ट हो जाता है की परवर्ती छन्दो का अतीत में क्या स्वरूप था और वर्तमान मे उसकी क्या स्थिति है तथा आगे की सम्भावित दिशा क्या है।

जैसा की अभी-अभी निवेदित कर चुके है की आचार्य द्विवेदी के पहले कविता की भाषा बृजभाषा मानी जाती है न केवल हिन्दी के प्रमुख स्तम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी की छन्दो रचना में वृजभाषा को स्वीकार किया था प्रत्युत छायावादी कविता के कर्णधार एवम विख्यात कामायनी महाकाव्य के प्रणेता श्री जयशंकर प्रसाद अपनी रचनाए प्रारम्भ में बृजभाषा में ही कर रहे थे उनका प्रेम पथिक पहले बृजभाषा में ही लिखा गया था बाद में वह खडी बोली में रूपान्तरित कर लिया गया हिन्दी साहित्य के विद्वान यह जानते है।

हिन्दी के छन्दो को नया रूप देने में चार कवियों का विशिष्ट योगदान हे श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध,बाबू मैथलीशरण गुप्त राजा गोपाल शरण सिंह एवम रामनरेश त्रिपाठी हरिऔध जी ने संस्कृत व्रत्तोरणी हिन्दी में अवतारणा की उनका प्रिय प्रवास संस्कृत व्रत्तो को लेकर हिन्दी में लिखा गया है एक आध उदाहरण देखिये विपत्ति से रक्षण सर्वभूत का[२] सहाय होना असहाय जीविका उवारना संकट से स्वजति का मनुष्य का सर्वप्रधान धर्म है और भी एक छन्द देखिये[३] अवश्य हिंसा अतिनिन्दनीय कर्म है, तथापि कर्तव्य प्रधान है यही न गेह हों पूरित सर्प आदि से वसुन्धरा में पनपे न पात की इन छन्दों के उल्लेख का तात्पर्य यह है की छन्दों रचना में हिन्दी में अत्यानुप्रास (तुकबंदी) का होना अनिवार्य समझा जाता था संस्कृत व्रत्तो में कोई ऐसा नियम नहीं है हरिऔध जी ने संस्कृत व्रत्तो को हिन्दी में उतार कर हिन्दी छन्दो की उक्त संर्कीणता दूर की राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त हरिगीतिका जैसे छन्दों को हिन्दी में उतारा यद्यपि वह तुकबन्दी के व्यामोह को छोड़ नहीं सके राजा गोपालशरण सिंह एवम रामनरेश त्रिपाठी का भी हिन्दी के नवीन छन्दो की उद्‌भावना में प्रमुख हाथ है।

इसके पूर्व छन्द शास्त्र के हिन्दी छन्दों का नाम रूप लक्षण भानुकवि दीक्षित कर चुके थे उनका छन्द प्रभाकर हिन्दी छन्दों के परिज्ञान हेतु वही स्थान रखता है जैसा संस्कृत छन्दों के लिए वृत्त रत्नाकर माना जाता है यह छन्द परम्परा पर्याप्त समय तक चलती रही किन्तु वह एक नया मोड़ लेने के लिए आतुर थी इस काम को आगे बढाया श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला एवम श्री सुमित्रा नन्दन पंत के निराला हिन्दी के सदी युगान्तर कारी है तो श्री पंत हिन्दी के युग प्रवर्तक पुराने छन्दो के प्रति विद्रोही स्वर दोनों का था किन्तु निराला बहुत ही प्रखर थे किन्तु पंत में सौम्यता सहजरूप में विद्यमान थी पन्त ने पुराने छन्दों को नवीन रूप दिया पर वह बड़ी ही शालीनता के साथ किन्तु निराला प्राचीन छन्दों के प्रति अपना विद्रोही स्वर इतना मुखर किया कि वह मुक्त वृत्त के रूप में सामने आया उनका बादल राग जूही की कली आदि इसके निदर्शन है किन्तु इसका यह आशय नहीं है की वह शास्त्रीय छन्दों के प्रति विरोध भावना रखते थे उनकी गीतिका में ऐसे छन्दों का संकलन है जो शास्त्रीय संगीत में खरे उतरते है।

हिन्दी के छन्दों का यह रूप परिवर्तन जो मुक्त वृत्त के रूप में विकसित हुआ आगे चलकर नयी कविता में अपने छन्दस तत्व को ही भूल बैठा परिणाम यह हुआ की न केवल परवर्ती हिन्दी के छन्द जो छन्द कहने योग्य नहीं एवं कविता भी जब जनजीवन से इतनी दूर अलग थलग पड़ गयी कि हिन्दी के प्रख्यात कवियों को भी एक आघात लगा जिनमें नरेश मेहता, शंकर दयाल सिंह आदि जाने कितने ही थे जिनको यह चिन्ता व्याकुल कर बैठी की क्या कारण है कि आज का कवि जन सामान्य से बहुत ही दूर पड़ गया है गोस्वामी तुलसी दास ने लिखा है[४] की जो प्रबन्ध बुद्ध नहीं आदर ही सो श्रम वृथा बाल कवि कर ही परिणामतः हिन्दी छन्दों से कटे हुए ऐसे साहित्यकारों की स्थिति यहाँ तक आ गयी जो आज भी वर्तमान है की यही उनकी रचनाओं को हिन्दी की उच्च्व परीक्षाओं से अलग कर दिया जाये तो उनका कोई नामलेवा भी न रहे जबकि हिन्दी के तुलसी दास, सूरदास, जायसी पद्माकर, रसखान रहीम मीरा, वृन्द एवं गिरिधर दास आदि सैकड़ो कवियों की रचनाये जनता के कंठ के आज भी हृदयधर है उन्हें कतई परवाह नहीं की उनकी रचनायें पाठ्य पुस्तकों में रखी जा रही है या नहीं

अपनी कमियों का निरीक्षण करते हुए इन प्रख्यात साहित्यकारों ने इसकी तलाश में सीतामढ़ी बिहार से लेकर चित्रकूट एवं चित्रकूट से अयोध्या तक की साहित्यक यात्रा की जिनमें अज्ञेय रामनरेश मेहता, शंकरदयाल सिंह जैसे अनेक प्रख्यात साहित्यकार भाग ले रहे थे इस माध्यम में जनसम्पर्क साधने पर उनको यह जानकारी हुई कि साहित्य में छन्दस का पहलू हाथ से छूट जाने के कारण ही वह आकाश में कटी पतंग की तरह भ्रमित हो रहे है।

अस्तु यहाँ छन्दस की स्थापना या खण्डन हमारा लक्ष्य नहीं है निषेध तो यह है की साहित्य का प्राण उसका लय प्रवाह है जिसको हम छन्दस कहते है जो वैदिक काल से लेकर आज तक प्रवहमान है वह अनुप्रेक्षणीय है।

क्योंकि विद्वान मनीषी हो या जनसामान्य हृदय के अह्लादन में छन्दस का प्रभाव अपरिहार्य है उसके बिना हृदय कमल का प्रस्फुटित होना असम्भव ही है।

इसका एक दूसरा पक्ष भी है की क्या साहित्य रचना में प्राचीन छन्दों की परिधि में ही प्रतिबद्ध रहा जाये तब तो साहित्य सरिता का प्रवाह ही सूख जायेगा, इस सन्दर्भ में शोधार्थिनी का नम्र सुझाव है की इसका अर्थ यह नहीं है की साहित्यकार प्राचीन छन्दों की परिधि में बंधा रहे वह अपनी रचना में उन्मुक्त भाव से अग्रसर हो सकता है आवश्यकता इस बात की है की छन्दों के विकास क्रम में जो नवीनता आयी हो उसको उपेक्षित न बनाया जाये कौन नहीं जानता कि निराला से लेकर आज तक के इस श्रेणी के कवियों की सर्वाधिक मुक्त वृत्त में लिखी गयी रचनाये कितनी प्रभावोत्पादक है इसलिये हमारी मान्यता यह है कि छन्दों विकास क्रम में मुक्त आदि की गरिमा नकारी नहीं जा सकती किन्तु यह अवश्य है की काव्य में किसी न किसी प्रकार से छन्द की अर्न्तमात्मा लय या प्रवाह की उपेक्षा न हो तो कथ्य की प्रभविष्णुता प्रतिष्ठित रहेगी।

उद्घत तालिका

1. गद्यम् कविनाम निकसम् वदन्ति।

   शिवराज विजय की भूमिका से उद्त

2. हरिऔध के प्रियप्रवास से उद्त।

3. वही।

4. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, बालकाण्ड, कवि की मानस रचना कि भूमिका से उद्धत

सप्तम अध्याय

सप्तम अध्यायः

उपसंहार

भाषा शास्त्रीयों के आकलन के अनुसार सताधिक भाषाए पायी जाती है। यदि इनमें कुछ भाषाओं कि संख्या सहत्र को भी पार कर जायेगी इन भाषाओं में परम प्राचीन भाषा संस्कृत हैं जिसको अमर भाषा या दैवीय वाक् कि प्रसस्ति से विभूषित किया गया है महर्षियों ने संस्कृत को दैवीय वाक् कहा है। संस्कृतं नाम दैवी वाक् साम्नता महर्षिभिः।

कतिपय पाश्चात शिक्षा दीक्षित भ्रान्त भाषा शास्त्री संस्कृत को मृत भाषा कहकर मिथ्या तर्क देते हैं कि जो सामान्य जनता के बोल-चाल में नहीं आती उसे मृत भाषा ही माना जाना चाहिए। संसार कि अनेक भाषाए जिसमें लैट्रिन, प्राचीन करसियन, हिर्बु आदि हैं उनको यदि मृत भाषा कि संज्ञा दी जाय तो यथावत अंकित उक्त भाषाशास्त्रियों का तर्क मान्य हो सकता हैं किन्तु संस्कृत भाषा जिसमें भारतीय भाषाओं में हिन्दी के पाश्चात विगत शताब्दी में सर्वाधिक साहित्यिक रचना संस्कृत में हुयी है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के ही सताधिक संस्कृत साहित्य के रचनाकार गिनाये जा सकते हैं। जिन्होंने संस्कृत महाकाव्य, नाटक, व्यंग्य काव्य, कहानी, उपन्यास, संस्कृत गीत निबन्ध आदि साहित्यिकि विविध विधाओं में महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे हैं। श्री सुधाकर द्विवेदी डा० रेवा प्रसाद द्विवेदी, अधिराज राजेन्द्र मिश्र, श्री जानकरी बल्लभ शास्त्री श्री राधावल्लभ शास्त्री, डा० रामजा उपाध्याय, डा० बटुक नाथ शास्त्री खिस्ते, श्री श्रीनिवास रथ, डा० प्रसस्थ मित्र शास्त्री, श्री मथुरा प्रसाद दीक्षित, शिवबालक द्विवेदी, कृष्ण दत्त चतुर्वेदी, रामकृपाल द्विवेदी जैसे संस्कृत के प्राख्यात रचनाकारों ने संस्कृत साहित्य की समवृद्धि किया है और आज भी उसको सुसम्रवृद्धि कर रहे हैं आधुनिक संस्कृत महाकाव्यों में रामानन्द दिग्विजय, जयदेव कीर्तिलता महाकाव्य, सीताचरितम्, जानकी जीवनम् बल्देव चरितम्, कृष्णाचरितम्, ऊषा परिणयम् देवदूतम् मयूर दूतम्, मुदगर दूतम्, अग्नि शिखा, अग्नि जा, कल्यानी जैसे संस्कृत महाकाव्य एवं प्रबन्ध काव्य इसके निदर्शन हैं विगत ५० वर्षो में संस्कृत साहित्य का भंडार इतना बड़ा है इस संन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि इस क्षेत्र में डा० रामजी उपाध्याय, डा० राधाबल्लभ शास्त्री ने सागर

विश्वविद्यालय के सौजन्य से संस्कृत साहित्य के रचनाओं के मुद्रण प्रकाशन में शोभनीय योगदान किया है जबलपुर विश्वविद्यालय के तत्कालीन संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० कुसुमकान्त चतुर्वेदी के निर्देशन में अनेक शोध श्री के माध्यम से अर्वाचीन संस्कृत साहित्य की विविध विधाओं को प्रकाश में लाया गया है बांदा जनपद के ही एक प्रख्यात विद्यवान मनीषि श्री सत्यनारायण शास्त्री ने कौमुदी कथा कल्लोलिनी कि रचनाकार भट्य काव्य कि परम्परा में श्री वृद्धि कि जो व्याकरण एवं काव्य कस युग पद प्रतिनिधित्व करता है।

आचार्य शिवऔतार मिश्र एवं डा० ओंकार प्रसाद त्रिपाठी कि संस्कृत गीतिकायें भी जो योगदान कर चुकी हैं। श्लाघनीय हैं संस्कृत के प्रचार-प्रसार एवं उसकी जीवन्तता कुछ ज्वलन्त प्रमाण ऊपर दिये गये है। यह संस्कृत विभूतियां भारत कि हैं यदि इसमें दक्षिण भारत के विशिष्ठ संस्कृत साहितय के रचनाकारों को समवेद किया जाये तो उनकी संख्या सहत्रादिक हो जायेगी इतने पर भी यदि कोई संस्कृत भाषा को मृत भाषा कहकर उसकी अवमानना करना चाहता है तो उसकी दृष्टता ही कही जायेगी।

संस्कृत भाषा वास्तव में अमर भाषा है संसार के विद्वानों ने इसके महत्व को स्वीकार किया है चाहे वह पश्चिम हो या पूरब सभी विद्वान मनीषि इसके महत्व को मुक्त कंठ से स्वीकारते है विश्व बन्द गांधी जी ने तो लिखा है कि जो भारत में उत्पन्न होकर जो संस्कृत का ज्ञान नहीं रखता है वह भारातीय संस्कृत सभ्यता से अपरिचित ही रहेगा जो चिन्तनीय है पं० जवाहर लाल नेहरु ने संस्कृत भाषा और उसके साहित्य कि भूरि-भूर प्रशंसा कि है और यहां तक कहा है कि जब तक अमर भाषा संस्कृत जीवित रहेगी और वह अमर हैं इसलिए जीवित ही रहेगी मानवीय संस्कृत को कोई नष्ट नहीं कर सकता योगिराज अरबिन्द ने अपने दार्शनिक सिद्धान्त को संस्कृत भाषा में लिखित दर्शनों के माध्यम से ही अपने नवीन दर्शन कि ईशा पताका विश्व में फैलायी आधुनिक भाषा शास्त्रियों कि मान्यता है कि जो भाषा अपने प्रवाह को अवरुद्ध कर बैठती है वह कालातीर्थ हो जाती है नदी के प्रवाह कालातीर्थ हो जाती है नदी के प्रवाह कि भांति भाषा का प्रवाह भी प्रवाहमान होते रहना चाहिए तभी वह भाषा जीवित कही जा सकती है किन्तु अमर भाषा संस्कृत भाषा के सम्बन्ध में यह बात लागू नहीं होती है यद्यपि

संस्कृत भाषा अपने आप में आदि काल से लेकर अद्यावधि अपने स्वरूप कि पहचान बनाये हुए हैं उसमें देश और काल का अन्तराल प्रभावी नहीं हो सका।

चाहे वह जर्मनी हो या फ्रांस अमेरिका हो या रूस इटली हो या ईरान चीन हो या जापान संस्कृत भाषा का उच्चारण और उसका अर्थाभाव समान है एवमेव ऋग्वेद से लेकर कालीदास तक एवम कालीदास से लेकर आज तक संस्कृत भाषा कि धारा प्रवाहमान है उसकी अपरिवर्तन शीलता हीं उसकी अमरता का मूल रहस्य है इसीलिये उसको अमर भाषा या दैवीय वाक्य कहना सर्वथा उचित है जबकि संसार की अनेक प्राचीन भाषायें जिसमें लैटिन हिब्रु आदि वह नामावेश हो चुकी हैं किन्तु अमर भाषा संस्कृत आज भी अपनी जीवनीशक्ति सुदृढ़ किये हुए है। और उत्तरोत्तर वर्धिष्णु होती जा रही है संस्कृत भाषा की अपनी एक और विशेषता है जो अन्य भाषाओं में दुर्लभ है। संस्कृत भाषा के वाक्य में आये हुए शब्दों को वाक्य में स्थान परिवर्तन न करने से किसी प्रकार का अर्थ परिवर्तन नहीं होता जबकि अन्य भाषाओं में यह बात नहीं पायी जाती स्वयं उसकी दयाद हिन्दी में भी यह विशेषता अप्राप्त है आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा[१] ने अपनी भाषा विज्ञान कि भूमिका के प्रकाशन में संस्कृत की इस विशेषता की चर्चा की है उदाहरणार्थ हिन्दी में एक उदाहरण है 'सांप मेढक खाता है' इस वाक्य में सांप कर्ता, मेढक कर्म, एवं खाता क्रिया है तात्पर्य यह होगा कि सांप ने मेढक को खाया किन्तु मेढक सांप खाता है यदि वाक्य में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जायेगा कि मेढक सांप को खा रहा है अर्थात अंग्रेजी भाषा में इस वाक्य का अनुवाद यह होगा-

Snak eats frog, frog eats snak.

अंग्रेजी के इन वाक्यों से शब्द परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन सुस्पष्ट है किन्तु संस्कृत में इसी वाक्य में शब्द परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन कि कोई सम्भावना नहीं रहती हैं जैसे सर्पः दर्दुरं खादति, दर्दुरं सर्पः खादति, खादति दर्दुरं सर्पः खादति सर्पः दर्दुरं इन चारों वाक्यों में शब्द परिवर्तन होने के बाद भी अर्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता। शब्द परिवर्तन करने पर भी सांप मेंढक खाता है यही अर्थ बना रहेगा। यहीं कारण है कि इस वैज्ञानिक युग में संसार भर में प्रयुक्त हो रहे कम्प्यूटर के निर्दोष भाषा कि तलाश

में अमर भाषा संस्कृत को ही चर्चा का विषय बनाया जा रहा है क्योंकि कम्पयुटर की भाषा कि अवगत में अर्थ परिवर्तन की त्रुटि इस भाषाके प्रयोग से नहीं हो सकती।

एक दूसरे दृष्टि से भी संस्कृत भाषा कि अमरता सिद्ध है भारत की अधिकतम भाषाओं में हिन्दी का स्थान सर्वोपरि है वह भारत के प्रत्येक राज्य में बोली या समझी जाती है इसमें संस्कृत के कम से कम ७५ प्रतिशब्द पाये जाते हैं अन्तर केवल इतना है कि संस्कृत संश्लेषणात्मक है उसके शब्दों में कारक चिह्न संयुक्त रहते हैं। किन्तु हिन्दी विश्लेषणात्मक हो गयी है उसमें शब्दों के आगे कारक चिह्न पृथक व्योहरित होते हैं यह बात तो हिन्दी कि है इसके अतिरिक्त भारत के प्रत्येक प्रान्तीय भाषाओं में ही संस्कृत भाषा के शब्द पर्याप्त मात्रा में अपना स्थान सुदृढ किये हुए है चाहे वह बंगला हो, मैथली, असमिय, हो या कन्नड़, महाराष्ट्री हो या गुजराती, तेलगू हो या केरलीय, पंजाबी हो या गुरूमुर्खा सब में संस्कृत के शब्द प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं केवल तमिल ही ऐसी भाषा है जिसमें संस्कृत के शब्द न के बराबर है। यह तो बात हुयी भारतीय भाषाओं कि देश से बाहर कि भाषाओं भी संस्कृत शब्दों कि अवस्थिति कम नहीं है। प्राचीन परसियन या अवेस्ता कि भाषा को यदि थोड़ा परिवर्तित कर दिया जय तो वह संस्कृत का रूप ले लेती है अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृत के शब्दों में इतनी समानता है कि आश्चर्य होता है। **Brother** (भ्राता) **Mother** (माता) **Sister** (बहन) **Daughter** (दुहिता) **Father** (पिता) तो जैसे क्वह तो प्रसिद्ध ही है। किन्तु अध्ययन करने पर भाषा शास्त्री इस निष्कर्ष में निकले हैं कि संस्कृत और अंग्रेजी किसी एक ही प्राचीन भाषा शास्त्री इस निष्कर्ष में निकले हैं कि संस्कृत और अंग्रेजी किसी एक ही प्राचीन भाषा की पुत्रिया हैं किसी कारण वश वह अंग्रेजी को संस्कृत को उत्पन्य माने में संकोच अनुभव करते हैं यह बात दूसरी है कि एक दिन इसकी यथार्थता सुस्पष्टता हो जायेगी। संस्कृत भाषा के उच्चारण में एक अपूर्व माधुरीय है जो अत्यन्त दुर्लभ है एक विद्यवान[२] ने लिखा है कि दुग्ध स्वाभावतः मधुर होता है किन्तु यदि उसमें मिश्री घी डाल दी जाये तो क्या कहना है अर्थात उसका आश्वादन अर्निवचनीय हो जायेगा ऐसी ही कुछ स्थिति संस्कृति कि है संस्कृत भाषा स्वयं ही अपने आप में अत्यन्त कर्ण मधुर है जो श्रुति सम्प्रेषित होकर व्यक्ति को आत्म विभोर कर देती है किन्तु

संस्कृत भाषा जब छन्दोमयी हो जाती है तो वह कितनी हृदय श्रुति मधुर बन जाती है यह सहृदयिक संवेद्य है।

भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने ललित काव्य के अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों पक्षों का गंभीर अध ययन किया है काव्य का अंतरंग अर्थ और बहिरंग वर्ग या शब्द माना जाता है काव्य के अंतरंग पक्ष का प्राणरस या ध्वनि होती है एवं भाषा को वर्ण विन्यास कि कुशलता उसके बहिरंग पक्ष को मधुर बनाती है समर्थ कवि या रचनाकार दोनों का सामंजस बनाये रखते हैं महाकवि[३] माघ ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति शिशुपाल वध में एक स्थान पर लिखते हैं कि सातकवि शब्द और अर्थ दोनों को समान गौरव प्रदान करता हूँ काव्य के सुति माधुर्य के लिये वर्णविन्यास का बड़ा महत्व है यहां तक कि सिद्ध कवियों कि उक्तियों में जो अर्थ द्वारा काव्य सम्प्रेषणी उसको अर्थनिरपेक्ष वर्ण ही कहने लग जाते हैं गोस्वामी तुलसीदास कि चौपाई के इस अंश को पढ़िये जहां कवि का अभिप्रेरित अर्थ भूषण झंकार कि पूर्ति वर्ण ही कर रहे हैं।

'कंकण किण किणनूपुर धुनि सुनि'[४]

इस पंक्ति में कंकन किण किणा इन दोनों शब्दों के वर्णों को पुनः पुनः उच्चारण करने पर स्वतः एक झंकार कानों में रस माधुर्य घोलने लग जाती है। यहाँ पर हम गीत गोविन्द एवं शिवतांडव के एक छन्द को इसकी पुष्टि के लिये प्रस्तुत कर रहे हैं जिससे हमारा कथ्य सुस्पष्ट हो जायेगा।

'रति सुख सारे गतममि सारे मदन मनोहर वेशम'
न कुरू नितम्बिननि गमन विलम्बन मनुसर तं हृदयेशम
धीर समीरे यमुना तीरे बसति वनै वन माली
गोपी पीन पयोधर मरदन चचंल कर युग साझी

(गीत गोविन्दम्)

जटाटवीगलज्जवल प्रवाह पावितस्थले
गलऽवलम्ब्य लम्बितां भुजग्ङ्तुग्ङमालिकाम्।

चकार चण्डताण्डवघं तनोतु नः शिवः शिवम्।।

(शिवताण्डवस्त्रोंवम्)

गीतोगोविन्द एवं शिवताण्डवस्त्रोत्र कि उपर्युक्त पंक्तियां के वाचन से यह श्वारस्य अनायास उत्पन्न होता है। नाट्यशास्त्र में नृत्य कि दो विधायें प्रस्तुत है एक है लास्य दूसरा ताण्डव लास्य सुकुमार नृत्य है और ताण्डव उद्धते नरतम् ललनाओं के लिये जहाँ और सुकुमार तथ्य लास्य कि प्रस्तुति प्रार्थित होती है वही पुरूष वर्ग में उद्धत नृत्य ताण्डव कि कहना नहीं होगा कि गीत गोविन्द उक्त गीत गोपिकाओं के साथ राधामाधव अपने महाराश में दान करते हुए वृन्दावन को रसमाधुर्य से सराबोर करते होगे वहीं राक्षस राज रावण भगवान शिव कि संतुष्टि हेतु शिवताण्डव स्त्रोत का गान करता हुआ ताण्डव नर्तन में तल्लीन होता होगा यहाँ यह लक्ष्य करने कि बात है कि गीत गोविन्द कि उक्त पंक्तियां तथा शिवताण्डव का उक्त छन्द अर्थ कि अपेक्षा न रखते हुए भी लास्य और ताण्डव कि प्रस्तुति सुकुमार उद्धत ध्वनियों से कर रहे हैं साहित्य शास्त्र में इस वर्ण विन्यास को शब्द शैया के नाम से अभिहित किया जाता है।

शोधार्थिनी को छन्दस कि ओर विशिष्ट आकर्षण का हेतु ऊपर निर्दिष्ट है मेरे एम०ए० के उत्तरार्द्ध में एक घटना और भी घट गयी है गयी जो मेरी इस प्रेरणा को और अधिक तीव्र से तीव्रतर कर गयी एमए० परीक्षा का प्रावधान है जिसका निस्तारण प्रत्येक परीक्षार्थी को करना अनिवार्य है मौखिकी के समय एक व्यक्तिगत परीक्षा में प्रविष्ट होने वाली एक मोहम्डन छात्रा को संस्कृत में मौखिकी देने आये मैने देखा परीक्षक के द्वारा यह प्रश्न पूछे जाने पर कि उस यौवन बालिका ने संस्कृत से एम०ए० करना किस कारण से सोचा और उसे पूरा किया उत्तर में उसने निवेदित किया कि पूर्व माध्यमिक में पढ़ने वाले उसका अनुज संस्कृत के श्लोकों का सस्वर वाचन करता था इस श्रुति माधुर्य ने उसे प्रभावित किया और उसने स्नातक एवं स्नातकोत्तर कक्षा में संस्कृत को अपना अध्येतव्य बनाया इस घटना ने मुझे अतिशय प्रभावित एवं प्रेरित किया कि संस्कृत भाषा एवं उसके साहित्य में इतना

माधुर्य क्यों है मेरा ध्यान साहित्य के कवच एवं मूलाधार छन्दस कि ओर गया परिणामतः मैने छन्दः शास्त्र के अवगाहन कि अपनी अभिरूचि सुदृढ़ कर ली।

यह मेरे लिये प्रसन्नता का विषय है कि मेरे इस अभिप्रेत के मेरे निर्देशक ने समाहित होकर सुना और मेरे शोध कार्य के लिये मुझे उनके द्वारा मन चाहा छन्दःशास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन क्योंकि मेरे निर्देशक महोदय संस्कृत में ऊषा परिणय महाकाव्य, भरत वैभवयम्, सावित्री सर्वस्यम के लेखक तथा आकाशवाणी में प्रकाशित होने वाले संस्कृत गीतों के कलाकार है। अतएव उन्होने वेद के इस उपेक्षित अंग छन्दस के विषय में स्वयं अभिरूचि प्रकट की जिसका यह प्रतिफल है।

आरम्भ में शोधार्थिनी कि प्रवृत्ति संस्कृत भाषा एवं उसके लालिप्य को लेकर ही हुई थी किन्तु छन्दस के अनुशीलन में ज्यों-ज्यों संस्कृत के वैदिक एवं लौकिक विधा से परिचय हुआ अन्ततः जीवन के प्रति संस्कृत साहित्य प्रभावन्विर्ता को लक्ष्य कर रस ओर उत्तरोत्तर मेरा अध्ययन छन्दस कि गहराई में डूबने लगा क्यों कि छन्दस के विषय में विधवाओं की ज्यों कि त्यों सर्वसाधारण धारणा भी सूक्ष्म अध्ययन करने पर वह सत् ही जान पड़ा।

मुझे ऐसा प्रतीत पड़ा जो आगे चलकर मेरे अन्तःमन को विश्वस्थ करता गया कि जिस प्रकार आरम्भ में साहित्य तत्वानिधियों कि दृष्टि काव्य के एक अंग अलंकारों के प्रति सत्ही तौर पर रहीं तभी तो उन्होने अलंकारों को कटंक बुण्डलादिवत साधारण अलंकरण मात्र समझा किन्तु साहित्य के गंभीर समीक्षकों द्वारा अन्ततः अलंकारों के प्रति उचित न्याय हुआ क्योंकि अलंकार काव्य के अलंकरण मात्र नहीं प्रत्युत काव्य कि आत्मा, ध्वनिंया रस के साथ उनका तादात्म है।

यही भूल छन्दस के प्रति भी हुयी जिससे छन्दस की यथार्थमूल्यवतता उपेक्षित होती गयी उसको भाषा यत तदगत अभिप्राय का कवचमात्र समझा गया और कही-कही तो छन्दस को भाषिक प्रवाह एवं अर्थ के सम्प्रेषण से अन्तराय तक समझा जाने लगा इसी मूल के कारण अर्वाचीन काव्य रचनाकारों द्वारा इसके प्रति विद्रोह का स्वर गूंजने लगा किन्तु सच तो यह है कि काव्य साहित्य में वर्ण विषय के साथ छन्दस एकात्म हो जाता है उसके परिपाक्य में छन्द मन बुद्धि एवं अन्तरात्मा को अतिसय अहलादित

करता है कहना नहीं होगा कि सम्पत्ति व्यक्ति के तनावग्रस्त अर्न्तमन के आहलादन में छन्दस का योगदान अभूतपूर्व है।

कोई माने या न माने किन्तु आधुनिक युग संगीत का युग है दूरदर्शन आकाशवाणी चित्रपट आदि अनेक साधनों के माध्यम से आज का मानव अपने मन के तनाव को दूर करने में समर्थ होता है यह मानी हुई बात हे कि संगीत में छन्दस का अविनाभाव छन्दोविहीन संगीत बेसुराआलाप ही हो जाता है इस तरह हम देखते है कि व्यक्ति एवं समाज दोनों ही आन्तरिक विकास एवं आनन्दानुभूति के लिये छन्दस का योगदान अभूतपूर्व है।

अस्तु शोधार्थिनी ने इस विषय पर कार्य करना आरम्भ किया और अनेक अन्तरायों के बावजूद भी ईश्वर की आसीम कृपा से यह कार्य पूर्ण हुआ वैसे तो छन्दःशास्त्र का अध्ययन समग्र रूप में परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता क्योंकि वस्तुतस्तु परिपूर्ण रूप तो परमात्मा का ही है फिर भी मेरा यह प्रयास इस क्षेत्र में आंशिक पूर्ति करेगा यह मेरा विश्वास है क्यों कि मैने दत्तावधान होकर इस शास्त्रीय विवेचन को रूप देने का यथोशक्ति प्रयास किया है।

(क) अधीत विषय का सिंहाक्लोकन

उपर्युक्त अध्यायों मे छन्दःशास्त्र का शास्त्रीय एवं विकासात्मक अध्ययन पूरा हो चुका है वेदांगों में सर्वाधिक उपेक्षित छन्दः शास्त्र की आधुनिक जनजीवन में प्रासंगिकता एवं उसकी उपादेयता ही इस शोध प्रबन्ध का उद्‌देश्य रहा है इस सन्दर्भ में शोधार्थिनी का यह प्रयास कितना सफल रहा है इसको विद्वाज्जन ही निर्णय लेगे छन्दः शास्त्र के सम्बन्ध में जो उपलब्ध साहित्य है उसके उपयोग करने में प्रमाद नहीं किया गया है किन्तु साथ ही कतिपय छन्दः शास्त्रीय ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हो सके इसलिये उनके बिना ही काम चलाया गया है, शोध छात्रा यह मुक्त कंठ से स्वीकार करती है अनेक छन्दः शास्त्रीय ग्रन्थों की अनुपलब्धों मे दो कारण स्पष्ट है प्रथम तो यह कि छन्दःशास्त्र साहित्यक क्षेत्र में उत्तरोत्तर उपेक्षित रहा है जैसा कि हमने देखा है की आधुनिक काल में छन्दस की स्थिति नगण्य प्राय हो चली

है इसलिये प्रकाशित या अप्रकाशित छन्दोग्रन्थ यदि सुलभता सेन प्राप्त हुए हो तो इसमें आश्चर्य नहीं है दूसरा हेतु यह है की शोधकार्य की अवधी में जितने पुस्तकालयों से सम्पर्क करने के लिये भागदौड़ करनी पड़ती है वह पुरूष वर्ग के लिये तो दुर्गम नहीं कही जा सकती किन्तु महिला शोध छात्रा के लिये यह भी बाध्यता होती है कि वह इस क्षेत्र मे अपने आप को अनेक कारणों वश असमर्थ पाती है फिर भी शोधार्थिनी ने यावद बुद्धि बलोदयं कार्य किया ही है इस पर उसे संतोष है।

शोध प्रबन्ध का प्रथम अध्याय ऋषयावकरण इस अध्याय में एक तरह से शोध विषय की पृष्ठभूमि की गयी है छन्द क्या है जनजीवन में उसकी उपादेयता क्या है करिश्यमाण शोध प्रबन्ध का क्या उद्देश्य है, छन्दस की उपेक्षा से जनर्जीवन के क्षेत्र में एवं समाज में सरसता की अपेक्षा निरसता का फैलाव होने लगता है इन सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय एक तरह से छन्द के प्रारम्भिक स्त्रोतों की तलाश है वेदमंत्रों में छन्दों की स्थिति एवं मंत्रोच्चारण अपरिहार्यता दर्शायी गयी है।

इसके पश्चात छन्दस की गहराई में उतरकर प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि छन्दों के विषय में क्या है इसका विवेचन किया था वैदिक छन्दों के विकास का निरूपण ही इसी अध्याय में किया गया है।

तीसरे अध्याय में छन्द शास्त्रीय ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है वैदिक छन्दों की धारा लौकिक छन्दों तक आते-आते कितनी वृद्धिंगत हुयी इसका संकेत इसी अध्याय में किया गया है चतुर्थ अध्याय में छन्दों के आंकलन की चेष्टा की गयी है, पुराण, इतिहास, रामायण, महाकाव्य आदि में उत्तरोत्तर छन्दों विकास को आंका गया है।

पंचम अध्याय में छन्दःशास्त्र के विनियोग पद्धति पर प्रकाश डाला गया है लोक और वेद में छन्दों के प्रयोग की व्याख्या की गयी है।

षष्ठम अध्याय एक तरह से प्रस्तुत विषय की परिसमाप्ति का सूचक है वैदिक छन्द लौकिक संस्कृति पालि प्राकृत अपभ्रंश की लोकयात्रा करते हुए मुक्त वृत्त पर कैसे पहुँचे एवं छन्दःशास्त्र के क्षेत्र

में आधुनिक छन्दों के विनियोग से क्या साहित्यिक विकास सम्भावित है इस अध्याय में इसकी चर्चा की गयी है, कुल मिलाकर कहना यह है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध छन्दो विकास की समग्र जानकारी भले ही न प्रस्तुत करता हो किन्तु इस संदर्भ में आंशिक परिज्ञान तो सुलभ ही किया गया है ऐसी अपनी मान्यता है।

आशा है कि प्रस्तुत शोध प्रबन्ध विद्वानो के मनोविनोद का साधन बनेगा एवं अल्पज्ञ छन्द:शास्त्र जिज्ञासुओं की आंशिक सहायता करेगा।

अंत में यह है कि ज्ञान समुद्र अगाध और अथाह निबन्ध है उसको समग्र रूप में समझने की बात करना दम्भ ही कहा जायेगा नि:सीम आकाश की सीमा को परिभाषित करना अपनी अल्पज्ञता सूचन है शास्त्राकाश का परिमापन कठिन ही नहीं असम्भव भी है फिर भी अल्पज्ञ शोधार्थिनी नभा: पतनत्याते समम् पतत्रीण के अनुसार मेरा यह प्रयास निष्फल नहीं कहा जायेगा ऐसा विश्वास है।

उद्‌घत तालिका

1. आचार्य देवेन्द्र नाथ शर्मा, भाषा विज्ञान की भूमिका के प्राक्कथन से उद्धित

2. मधुरं ही पयः स्वभावतो, ननकीर्दिक्सित शर्करा नितम्।

   एक सुभाषित का अंक
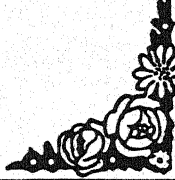
3. शब्दार्थो सत कविरिवद्यं विद्यवान पेक्षते।

   शिशुपाल बध द्वितीय सर्ग

4. रामचरित मानस के बालकाण्ड के पुष्पवाटिका से उद्धित।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

शोध प्रबन्ध में उदधृत/स्मृत ग्रन्थों की तालिका

१- ऋगवेद

२- ऋक प्रातिसाख्य

३- सांख्यायन श्रोत सूत्र

४- निदान सूत्र

५- शतपत् ब्राह्मण एक अध्ययन

६- पिंगल सूत्र

७- महाभाष्य

८- पाणिनीय शिक्षा

९- सिद्धान्त कौमुदी

१०- रामायण

११- महाभारत

१२- भागवत

१३- भगवद गीता

१४- अग्निपुराण

१५- भरत नाट्यशास्त्र

१६- वृहन्तसंघिता

१७- वृत्तरत्नाकर

१८- छन्दोमंजरी

१९- श्रुतबोध

२०- सुवृत्ततिलक

२१- मेघदूत

२२- शाकुन्तल

२३- रघुवंश

२४- कुमार सम्भव

२५- किरतार्जुनीय

२६- शिशुपाल वधं

२७- नैषधीय चरित

२८- अमर कोष

२९- संस्कृत साहित्य का इतिहास

३०- छन्दःकौमुदी

३१- छन्दो विचित

३२- वाणी भूषण

३३- प्राकृत पिग्ङल

३४- छन्दः प्रभाकर

३५- प्रिय प्रवास

३६- कामायनी

३७- रामचरित मानस

३८- गंगालहरी

३९- महिमनः स्त्रोत

४०- गीतिका

४१- वामूवल्लभ

४२- निरक्त

४३- कठोपनिषद

४४- ब्राह्मण ग्रन्थ

४५- छन्दोनुशासन

४६- शिवताण्डवस्तोत्रम्

४७- गीत गोविन्द

४८- विक्रमाशीय अरुण

४९- संस्कृत सुक्ति सुधा

५०- गीत गिरीशमं

५१- गीत रघुनन्दन

५२- भारत भारती

५३- पल्लविनी

५४- हिन्दी साहित्य का इतिहास

५५- शिवयज्ञ विज्य

५६- मयूरदूतम

५७- देवदूतम

५८- मुदगर दूतम्

५९- अग्नि जा

६०- अग्नि शिखा

६१- कौमुदी कथ्य कल्लोनिनी

६२- कल्लोनिनी

६३- ऊषा परिणय

६४- सीता परिताम्

६५- जानकी जीवनम्

६६- कृष्णाचरितम्

शोधग्रन्थ में उद्धृत/स्मृत
विशिष्ट विद्वानों के नामों की तालिका

१- यास्क

२- पंतजली

३- पाणिनी

४- भट्टकेदार

५- भट्टनरायण

६- क्षेमेन्द्र

७- कालिदास

८- माध

९- श्रीहर्ष

१०- रेवा प्रसाद द्विवेदी

११- सुधाकर द्विवेदी

१२- जयशंकर प्रसाद

१३- मैथिली शरण गुप्त

१४- हरिऔध

१५- राजा गोपाल

१६- राम नरेश त्रिपाठी

१७- डा. कृष्ण कुमार

१८- डा. र६जना मिश्रा

१९- सूरदास

२०- तुलसीदास

२१- रहीम

२२- रसखान

२३- मीरा

२४- वृन्द

२५- गिरिधर दास

२६- सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला

२७- वाल्मीकि

२८- व्यास

२९- पिंग्ङलचार्य

३०- सुमित्रानन्दन पंत

३१- अमर सिंह

३२- हेमचन्द्र

३३- भानु दीक्षित

३४- अज्ञेय

३५- रामनरेश मेहता

३६- शंकर दयाल सिंह

३७- नरेश मेहता

३८- बराह मिहिर

३९- जगन्नाथ

४०- जयदेव

४१- जायसी

४२- भवभूति

४३- भास

४४- राज शेखर

४५- विद्याधर

४६- प्रभात शास्त्री

४७- राधा बल्लभ शास्त्री

४८- श्रीनिवास

४९- कृष्णदत्त चतुर्वेदी

५०- जानकी बल्लभ शास्त्री

५१- शिव बालक द्विवेदी

५२- डा० कृष्ण कान्त चतुर्वेदी

५३- डा० राम जी उपाध्याय

५४- डा० ओंकार प्रसाद त्रिपाठी

संस्कृत के प्रख्यात रचनाकारों द्वारा प्रयुक्त छन्दों का विवरण
(कालीदास, भारती, माघ, श्री हर्ष)

लघुत्रयी

१- मेघदूत संदेश काव्य	–	पूर्व मेघ तथा उत्तर मेघ में प्रयुक्त मात्र मन्दाक्रान्ता
२- कुमार संभव महाकाव्य	–	उपजाति, मालिनी, अनुष्टुप, रथोद्धता, पुष्पिताग्रा, वशंस्थ, बसन्ततिलका
३- रघुवंश महाकाव्य	–	अनुष्टुप, शालनी, उपजाति, मालनी, वंशस्थ, हरिणी, प्रहर्षणी, वियोगिनी, द्रुत विलम्बित, बसन्ततिलका, रथोद्धता, श्रग्धरा

वृहत्त्रयी-

१- किरातार्जुनीय महाकाव्य	–	वशंस्थ, बसंततिलका, पुष्पीताग्रा, मालनी, वियोगिनी, उपजाति, द्रुतविलम्बित, प्रमिताक्षरा, प्रहर्षणी, स्वगता, शिखरिणी, अनुष्टुप उद्धता, औपछन्दसिक
२- शिशुपाल वध महाकाव्य	–	वंशस्थ, अनुष्टुप, उपजाति, बसन्ततिलका, द्रुत विलम्बित, पुष्पिताग्रा, प्रहर्षणी, प्रतिमाक्षरा, स्वगता, मालनी, मज्जु भाषिणी, रथोद्धता, उद्गता, वैतालीयक, रुचिरा, शालिनी, औपछन्दसिक, आख्यानिकी, इन्द्रवज्रा।
	–	शार्दूलविक्रीडित, पंचकावली, शिखरिणी, अतिशायनी, मन्दाक्रान्ता, हरिणी, श्रग्धरा, वैश्वदेवी, मेघविस्फूर्जित
३- नैषधीय चरित महाकाव्य	–	वंशस्थ, बसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीड़ित, वियोगिनी, मालनी, उपजाति, द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, उपेन्द्रबज्रा, अनुष्टुप, हरिणी, शालिनी